ऋषि प्रसाद

दीवाली के दीप जलाकर
जगमग भारत सारा कर दो ।
बहा प्रेम की गंगा जग में दूर
द्वेष अंधियारा कर दो ॥
जो हैं शोषित और पीड़ित
बेसहारे धरती के ।
देकर प्रेम सहारा उनको
घर-घर में उजियारा कर दो ॥

पूज्यपाद संत श्री
आसारामजी बापू

वर्ष : ६
अंक : ३४
अक्तूबर १९९५

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ६
अंक : ३४
९ अक्तूबर १९९५
सम्पादक : के. आर. पटेल
मूल्य : रू. ४-५०

सदस्यता शुल्क

भारत, नेपाल व भूटान में

वार्षिक	द्विमासिक संस्करण हेतु	रू. 30/-
	मासिक संस्करण हेतु	रू. 50/-
आजीवन	द्विमासिक संस्करण हेतु	रू. 300/-
	मासिक संस्करण हेतु	रू. 500/-

विदेशों में

वार्षिक	द्विमासिक संस्करण हेतु	US $ 18
	मासिक संस्करण हेतु	US $ 30
आजीवन	द्विमासिक संस्करण हेतु	US $ 180
	मासिक संस्करण हेतु	US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५
फोन : (०७९) ७४८६३१०, ७४८६७०२.

प्रकाशक और मुद्रक : के. आर. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा,
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५ ने
विनय प्रिन्टिंग प्रेस, मीठाखली एवं भार्गवी प्रिन्टर्स,
राणीप, अहमदाबाद में छपाकर प्रकाशित किया ।

इस अंक में...

१. परमहंसों का प्रसाद ... २
२. संतवाणी
  विवेक दृष्टि ... ५
३. सत्संग सरिता
  सहज जीवन ... ७
४. श्रीराम-वशिष्ठ संवाद
  वास्तविक देव कौन ? ... ९
५. कथा-प्रसंग
  जीवन का कार्य ... ११
  तत्त्वदृष्टि ... १३
६. आत्मप्रसाद
  आत्मज्ञान ही सर्वोत्तम ... १४
७. सत्संग निधि
  अंतर-आलोक ... १५
८. परिप्रश्नेन ... १८
९. शरीर-स्वास्थ्य
  शरद ऋतुचर्या ... १९
  लीवर के रोग में ... १९
  कैंसर के रोगियों के लिए ... २०
  दाँतों की सुरक्षा ... २०
  परम स्वास्थ्य की ओर ... २०
  स्वास्थ्य-प्रश्नोत्तरी ... २०
  पापकर्म से रोगोत्पत्ति ... २२
१०. आपके पत्र ... २३

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें ।
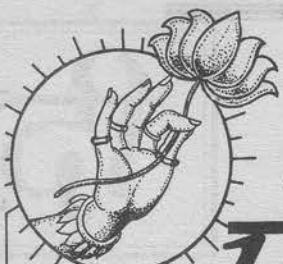
- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे ।
बाकी न मैं रहूँ , न मेरी आरजू रहे ॥
जब तक कि तन में जान, रगों में लहू रहे ।
तेरा ही जिक्रया तेरी ही जुस्तजू रहे ॥

जिनको संसार का आकर्षण है, उन्हें बहुत मेहनत करनी पड़ती है फिर भी बार-बार जन्मना-मरना व पीड़ा-दुःख सहना मिटता नहीं है लेकिन जिनका आचरण शुद्ध है, वे शुद्ध भगवद्भक्ति का प्रसाद पाकर आनंदमयी माँ की तरह आत्मसुख का खजाना खोज लेते हैं । धनभागी हैं एकनाथ जैसे सत्शिष्य जो सदाचार से गुरुसेवा, गुरुआज्ञा एवं गुरुकृपा में तल्लीन रहते थे ।

अभागे आदमी को भक्ति का रंग नहीं लग सकता और पापी, पातकी को भक्ति में रुचि नहीं होती । यदि भक्ति में रुचि हो तो पापी व पातकी आदमी भी तर सकते हैं । जिनका आचार, विचार शुद्ध है उनको भक्ति में रुचि होती है, मौन व सदाचार में रुचि होती है । संसार का आकर्षण उन्हें प्रभावित नहीं कर सकता जबकि अभागे लोग संसारी आकर्षण में बरबाद हो जाते हैं । नश्वर देह व नश्वर आकर्षण में अपनी जिन्दगी का जो नाश करते हैं, उन्हें पशुयोनि में भी पीड़ा सहनी पड़ती है । जो भगवद्भक्ति का सहारा लेते हैं, अपने अन्तरात्मा परमात्मा को साक्षी समझकर जो सत्यस्वरूप ईश्वर को पाने के लिये सदाचरण करते हैं, वे सदाचारी, संयमी पुरुष सुखस्वरूप परमात्मा में प्रवेश पा लेते हैं ।

जिनका आचार, विचार शुद्ध है, संसार का आकर्षण उन्हें प्रभावित नहीं कर सकता जबकि अभागे लोग संसारी आकर्षण में बरबाद हो जाते हैं ।

जो भगवद्भक्ति का सहारा लेते हैं, अपने अन्तरात्मा परमात्मा को साक्षी समझकर जो सत्यस्वरूप ईश्वर को पाने के लिये सदाचरण करते हैं, वे सदाचारी, संयमी पुरुष सुखस्वरूप परमात्मा में प्रवेश पा लेते हैं ।

अनात्मवस्तु में अहम् प्रत्यय करने से जीव दुःखी होता है । यदि आत्मवस्तु में, आत्मचेतना में जीव प्रीति करे, अहम् प्रत्यय करे तो दुःख दूर हो जाता है ।

जिसको संसार के पदार्थ आकर्षित नहीं करते, वह अन्तरात्मा को, अन्तर्सुख को पा लेता है । संसार के पदार्थ विवेक के अभाव में आकर्षित करते हैं । विवेक हो तो जगत् के पदार्थों में कोई आकर्षण नहीं होता । जिनकी बुद्धि शुद्ध है और जिनका आचरण पवित्र है, उनको आत्मा-परमात्मा का ही आकर्षण होता है ।

जगत की रुचि टिक नहीं सकती और परमात्मा की रुचि मिट नहीं सकती । जगत् की किसी भी वस्तु में रुचि करो, टिकेगी नहीं । धन ज्यादा मिल जाए तो क्या होगा ? अरुचि हो जाएगी, टेन्शन हो जाएगा । भोजन में रुचि है लेकिन नहीं मिला तब तक । मिल गया और ज्यों-ज्यों खाते गये, रुचि मिटती गई । दो ग्रास अधिक खाया तो रुचि खत्म ।

एक महात्मा थे जो भिक्षा माँगकर रूखा-सूखा ही खाते थे । एक दिन उनके मन में आया कि खीर खावें । वे जहाँ से भिक्षा लाते थे उस आदमी का हलवाई

का धंधा था । महात्मा ने उससे कहा :

''भाई ! कल हम खीर खाएँगे ।''

हलवाई बड़ा खुश हुआ कि महाराज हमेशा मेरे घर की रूखी-सूखी रोटी ही लेते हैं । कभी शीरा देता हूँ तो वापस कर देते हैं व दूध भी नहीं लेते और आज स्वयं कल के लिये खीर माँग रहे हैं । उसने दूसरे दिन गाय के दूध में पिस्ता-बादाम डालकर खूब घोंटकर खीर बनाई । महात्मा जब लेने आये तो उनके खप्पर में ठंडी करके डाल दी ।

जिसको संसार के पदार्थ आकर्षित नहीं करते, वह अन्तरात्मा को, अन्तर्सुख को पा लेता है ।

महात्मा खीर लेकर अपनी कुटिया में पहुँचे और मन को कहा : ''ले ! खीर की रुचि है, खीर का आकर्षण है, अभागे ! जो थोड़ी देर के बाद विष्ठा बन जाएगी उसीका आकर्षण है ! हाड़-माँस के शरीर का आकर्षण, खीर का आकर्षण, धनदौलत का आकर्षण...! भगवान का आकर्षण नहीं है, भगवान में रुचि नहीं है तभी ये आकर्षण हैं । हे मन ! तू बेइमान है । तुझे भगवान में रुचि नहीं है, जप-तप में रुचि नहीं है, पवित्रता में रुचि नहीं है, शाश्वत् का आकर्षण नहीं है ।'' अपना कान पकड़कर गाल पर थप्पड़ मारी और कहा : ''ले खा... ।''

ऐसा कोई शरीर नहीं, जो मरनेवाला न हो । ऐसा कोई भोग नहीं, जो दुःख देनेवाला न हो । ऐसा कोई लोक नहीं जहाँ से हटना न हो ।

फिर भी मन ने सोचा : 'इतनी महँगी खीर है, बहुत दिनों से सोचा था, थोड़ी खा लेता हूँ ।' खीर कटोरी में डाली और पी । जो रुचि थी, उस पर थोड़ी ब्रेक लगी । दूसरी कटोरी पी तो रुचि घटी । तीसरी कटोरी पी । ऐसा करते-करते खप्पर में जितनी खीर थी सब ठांस-ठांसकर पी । 'ओंऽऽ ओंऽऽ ओंऽऽ...' हुआ फिर भी मन को बोले : 'नहीं, ले, ले, पी, पी, ले मजा ले ले...' और ठांस-ठांसकर पी तो जितनी पी थी, सब वमन द्वारा बाहर आ गई ।

खप्पर में माल वापस आ गया । वे मन को कहते हैं : 'ले ! इन पदार्थों में रुचि कर ! इनमें आकर्षण कर !' फिर खप्पर में जो आया था उसे फिर से पिया तो जो बाकी बचा था वह भी 'हू... आ...' करके बाहर आ गया । फिर तो मन साकार होकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया कि : 'गुरुजी ! अब ईश्वर के सिवाय कभी भी, कहीं भी रुचि नहीं करूँगा, आकर्षित नहीं होऊँगा ।'

मन को सजा के बिना सच्चा मजा भी नहीं मिलता है ।

बुद्धिमान को इशारा करो तो समझ जाय लेकिन दुष्ट मन को जब तक सजा नहीं मिलती तब तक उसका आकर्षण नहीं छूटता । इसलिये या तो अपने आप हिम्मत करके मन को आकर्षण छुड़ावें या भक्ति का रंग लगाकर छुड़ावें । ज्यों-ज्यों आकर्षण छूटेगा त्यों-त्यों भगवान का रंग लगेगा । बढ़िया भोजन में आकर्षण, खीर-पकोड़ों में आकर्षण... यह सब कुछ इष्ट नहीं है । यदि तुमने जीवन जीने का ढंग ही नहीं जाना तो कुछ भी नहीं जाना ।

रामतीर्थ को नींबू में आकर्षण हो गया था । कालीमिर्च व नमक डालकर सेंके हुए नींबू पड़े थे । नींबू नाम ही ऐसा है कि मुँह में पानी आ जाय । प्रोफेसर तीर्थराम के मुँह में भी पानी आ गया । सेंके हुए मसालेदार दो नींबू लेकर अपने कमरे में बैठ गये । हाथ बन्द कर दिये और मन को कहा : 'ले खा ! खा, खा !' मन कहता है : 'उठाओ तो खाएँ ।'

नींबू हाथ में उठाया, होंठ तक लाये और कहा : 'ले खा !' ऐसा करते-करते आधे घंटे तक मन को नचाया तो नींबू का आकर्षण छूट गया और भगवान का ध्यान लग गया । संसार का आकर्षणमात्र साधक के विनाश का कारण है । जिसे भविष्य में दुःखी होना हो वह संसार का आकर्षण करे । जिसका भविष्य अंधकारमय करना हो उसे शराब का चस्का लगा दो, बस हो गया पतन शुरू ।

तुलसीदासजी कहते हैं :

जानिहि जीव तब जागा।
हरिपद रुचि, विषय विलास बिरागा ॥

जीव कब जगे ? भगवान में, अन्तरात्मा के सुख में रुचि हो तब । यदि विषय-विलास, छल-कपट व संसार के आकर्षणों से वैराग्य न होकर उनमें रुचि ही बनी रही तो वह आदमी ईश्वर के रास्ते चलने के लायक नहीं है, नालायक है, Unfit है । उसे अधम पशुयोनियों की यात्रा करते हुए डंडे खाने ही पड़ेंगे । अपने मन को ऐसा समझाकर भी मनुष्य जीवन का लाभ उठाना चाहिये ।

ऐसा कोई शरीर नहीं, जो मरनेवाला न हो । ऐसा कोई भोग नहीं, जो दुःख देनेवाला न हो । ऐसा कोई लोक नहीं जहाँ से हटना न हो । किसी भी लोक में जाओ, वहाँ से हटना ही पड़ता है । कोई भी वस्तु मिलेगी, उसे छोड़ना ही पड़ता है । कोई भी भोग भोगा तो हमें क्षीण होना ही पड़ता है लेकिन यदि भगवद्वस्तु, भगवद्ज्ञान मिल गया तो न वह छूटता है, न टूटता है ।

एक बार भगवद्वस्तु, भगवद्ज्ञान मिल गया तो न वह छूटता है, न टूटता है ।

यह मरनेवाला शरीर छूटकर नष्ट हो जाए उसके पहले भीतर ही भीतर गोता मारकर तुम अमर आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लो तो कितना अच्छा होगा ! लोक और परलोक की यात्रा में भटकना पड़े उसकी अपेक्षा आत्मलोक, परमात्मलोक में स्थिति प्राप्त कर लोगे तो कितना अच्छा होगा ! नश्वर संसार की वस्तुओं को समेटते-समेटते प्राण निकले उसकी बजाय आत्मधन को प्राप्त कर लोगे तो कितना अच्छा होगा ! विषय-विकारों में अपना जीवन बर्बाद हो इससे तो हरिनाम की प्यालियाँ पीते-पीते अपना जीवन आबाद कर लोगे तो कितना अच्छा होगा !

उठो... कब तक सोते रहोगे ? जिन्दगी के दिन यूँ ही बीते जा रहे हैं भैया ! अपना काम बनाकर जन्म-मरण से मुक्त हो जाओ, बस ।

(पृष्ठ १० का शेष)

और सनातन है । वह सदा से है और सूक्ष्मातिसूक्ष्म है । वही विज्ञानस्वरूप देव, भगवान शिव और परम कारणस्वरूप है । अत: ज्ञानरुप पूजन-सामग्री से उसीकी सदा-सर्वदा पूजा करनी चाहिए । एकमात्र वह परमात्मा ही पूज्य है, उसके सिवा दूसरा कोई पूज्य नहीं है । अत: उस विज्ञानानन्दघन परमात्मा की पूजा ही वास्तविक पूजा है ।

भगवान शंकर वशिष्ठजी से कहते हैं : ''महर्षे ! जो परमार्थत: सबसे श्रेष्ठ है, जो आपका, तत् पदार्थ का, मेरा तथा समस्त जगत् का स्वरूपभूत है एवं जो स्वयं परिपूर्ण स्वरूप है, ज्ञानरूप सामग्री से पूजा करने योग्य उस देव का मैंने आपसे वर्णन कर दिया । सभी वस्तुओं का, समस्त जगत् का, दूसरे का, आपका और मेरा सर्वव्यापी चिन्मय परमात्मा ही पारमार्थिक स्वरूप है, दूसरा नहीं ।''

अगर उस पारमार्थिक स्वरूप को आप जान लो तो आप भी भगवद्रूप हो जाओगे । बुद्ध, व्यास, पतंजलि या नानक को भगवान करके पूजते हैं क्योंकि उन्होंने उस पारमार्थिक सत्ता का अनुभव कर लिया था । आप भी उस पारमार्थिक सत्ता का अनुभव करके अपने जीवन का कल्याण कर लो । जीते-जी मुक्ति का अनुभव कर लो और जीवन की शाम हो जाये उसके पहले जीवनदाता से मुलाकात कर लो ।

नारायण... नारायण... नारायण... नारायण...

विवेक दृष्टि

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

जब तक मनुष्य की भीतरी समझ में परिवर्तन नहीं होता तब तक भले ही डंडे, बन्दूक और कायदों का कितना भी प्रयोग कर लो, आदमी ऊँचा नहीं उठता है । सत्संग, संयम और नियम से ही मनुष्य महान् बनता है । गुजरात में नशाबंदी के कारण कोई शराब पीना छोड़ देता है तो माउन्ट आबू में जाकर पीता है और गुजरात में भी दबे-छुपे बहुत बिक रही है । नशाबंदी के कितने भी नियम लागू कर दिये जावें लेकिन जब तक मनुष्य का ज्ञानवर्धन नहीं होता, संयम और सदाचार का प्रचार-प्रसार नहीं होता, किसमें लाभ और किसमें हानि है- इस बात के संस्कार युवाओं और किशोरों पर नहीं पड़ते तब तक विकास संभव नहीं है । व्यापार-व्यवसाय के माध्यम से मनुष्य का आर्थिक विकास हो सकता है लेकिन वास्तविक विकास तो केवल सत्संग से ही होता है । सत्संग से दुर्जन सज्जन बनते हैं, सज्जनों को शांति मिलती है व शांत बंधनमुक्त होते हैं ।

जब तक मनुष्य की भीतरी समझ में परिवर्तन नहीं होता तब तक भले ही डंडे, बन्दूक और कायदों का कितना भी प्रयोग कर लो, आदमी ऊँचा नहीं उठता है । सत्संग, संयम और नियम से ही मनुष्य महान बनता है ।

गांधीजी कहते थे : ''विचारों से ही आदमी उत्कर्ष को जाता है और विचारों से ही अधोगति को जाता है । मनुष्य को जैसा साहित्य, संग, खान-पान और चिन्तन मिलता है वैसे ही उसके विचार निर्मित होते हैं । समाज में जो अच्छा चिन्तन करते-कराते हैं, वे मनुष्य जाति के परम हितैषी माने गये हैं ।''

विवेकानंद कहते थे : ''तुम किसीको भोजन कराते हो, भूखे को अन्न देते हो और चार घंटों के लिये उसकी भूख मिटती है तो यह पुण्यकर्म तो है लेकिन उसकी एक महीने की जीविकोपार्जन की व्यवस्था करो तो अधिक पुण्य है । यदि तुम वर्षभर के लिये उसकी भूखनिवृत्ति की कोई योजना कर देते हो तो एक दिन व एक माह से भी बढ़कर पुण्य होगा ।''

जिससे जितनी अधिक दुःखनिवृत्ति होती है वह उतना ही बड़ा सत्कार्य माना जाता है । मनुष्य जाति को तुम सदाव्रत में बदल दो, घर-घर में गाड़ी रख दो, घर-घर में फेमिली डॉक्टर की व्यवस्था कर दो और प्रत्येक व्यक्ति को कार दे दो फिर भी मनुष्य का दुःख निवृत्त नहीं होगा क्योंकि उसमें दुःख बनाने की फेक्ट्री मौजूद है, अपेक्षाएँ बनानेवाली बेवकूफियाँ मौजूद हैं । इस कारण वह फरियाद भी करेगा और अपेक्षाएँ बढ़ाता जाएगा । लेकिन मनुष्य का अज्ञान मिटाने के लिये जो ज्ञान देते-दिलाते हैं, फालतू वासनाएँ बढ़ाने की अपेक्षा सात्त्विक कर्म की ओर प्रेरित करते हैं, सदाचार व सत्संग का जो दान देते, दिलाते हैं, इतना ही नहीं, उनके दैवी कार्य में जो भागीदार होते हैं, वे भी मनुष्य जाति के परम हितैषी हैं ।

जो लोग अखबारों के द्वारा घर-घर सत्संग पहुँचाने का कार्य करते हैं उन्हें देखकर मुझे लगता है कि मेरे गुरुजी का कार्य करनेवाले पुण्यात्मा अभी भी मौजूद हैं ।

मेरे गुरुजी स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज की उम्र जब ८४ वर्ष की थी, तब की बात है । नैनिताल के जंगलों में वे जब कभी एकांतवास करते तो अच्छी-अच्छी पुस्तकें एकत्रित करके उनकी गठरी बनाकर पहाड़ी से पैदल उतरते और दूसरी पहाड़ी पर बसे गाँवों में जाते । माताओं को वे 'महान् नारी' जैसी

एवं युवकों को 'पुरुषार्थ परमदेव' व 'यौवन सुरक्षा' जैसी पुस्तकें देते और कहते कि 'आप खुद पढ़ना और जो अच्छा लगे, वह याद रखना । आज गुरुवार है, अगले गुरुवार को मैं इस गाँव में फिर आऊँगा और ये किताबें लेकर दूसरी दे जाऊँगा । यह लो प्रसाद ।'

इतना कठोर परिश्रम करते हुए वे गाँव-गाँव में घूमते ही रहते थे । जहाँ ट्रेन से यात्रा की जरूरत पड़ी तो ट्रेन से और जहा हवाईजहाज की जरूरत पड़ी वहाँ उसका उपयोग करते थे । सौभाग्यवशात् मुझे उनके दर्शन हो गये । जिन महापुरुष की मुझे खोज थी वे ही सांई लीलाशाह के रूप में मुझे सामने मिल गये । मेरा दिल उनके पावन चरणों में शर्तरहित समर्पित हो गया और उन्होंने मुझे जो दिया उसका पूरा तो वर्णन नहीं हो सकता है लेकिन मैं जानता हूँ और थोड़ा-थोड़ा दुनिया भी जानती है ।

जो बीड़ा उठा लेते हैं धर्मप्रचार और समाज की जागृति का, वे महापुरुष ताउम्र उसीमें लगे रहते हैं । उनका दृढ़ निश्चय होता है -

मरने के सब इरादे जीने के काम आये ।
वे और थे मुसाफिर जो पथ से लौट आये ॥

जिन महापुरुष के कान में कीले ठोके गये वे महावीर भी लोगों की परवाह न करके आजीवन धर्मप्रचार करते रहे । ऐसा नहीं कि केवल समाज के लोगों ने ही उनके धर्मप्रचार को शिरोधार्य किया अपितु उनके परिवार का गौशालक नामक युवा भी भिक्षु बन गया और धीरे-धीरे महावीर के साथ-साथ उसका भी थोड़ा यश-मान होने लगा । एकबार महावीर ने करुणा करके उसे डाँट दिया कि : 'अपेक्षा न रखो । यशभोगी मत बनो, इन्द्रियभोगी मत बनो, आत्मारामी बनो ।' महावीर ने कुछ लोगों की उपस्थिति में उसे डाँटा तो वह ५०० भिक्षुओं को लेकर पृथक् हो गया और महावीर के विरुद्ध अनर्गल प्रचार करने लगा ।

मनुष्य जाति को तुम सदाव्रत में बदल दो, घर-घर में गाड़ी रख दो, घर-घर में फेमिली डॉक्टर की व्यवस्था कर दो और प्रत्येक व्यक्ति को कार दे दो फिर भी मनुष्य का दुःख निवृत्त नहीं होगा क्योंकि उसमें दुःख बनाने की फेक्ट्री मौजूद है, अपेक्षाएँ बनानेवाली बेवकूफियाँ मौजूद हैं ।

आज के मनुष्य का भी यही हाल है । अपने उद्धारक व करुणावरुणालय सद्गुरु की हजार-हजार मीठी नजरें पड़ती हैं तो उनकी कृपावृष्टि की ओर हमारी नजरें नहीं जाती हैं लेकिन कभी कुछ खारा-खट्टा मिल जाता है तो अहंकार को बड़ी ठेस पहुँचती है कि उन्होंने ऐसा क्यों कह दिया ? भैया ! ऐसे जीवन्मुक्त महापुरुष जो भी करते हैं उसमें शिष्य का हित ही छुपा है ।

अपने उद्धारक उन करुणावरुणालय सद्गुरु की हजार-हजार मीठी नजरें पड़ती हैं लेकिन कभी कुछ खारा-खट्टा मिल जाता है तो अहंकार को बड़ी ठेस पहुँचती है कि उन्होंने ऐसा क्यों कह दिया ?

गौशालक आजीवन ५०० भिक्षुओं को साथ लेकर महावीर का कुप्रचार करता रहा और मरकर किस नर्क में पड़ा, मुझे पता नहीं लेकिन महावीर को तो अभी लाखों लोग जानते हैं ।

जिसके जीवन में त्याग है, आत्मविश्रांति है, दुनिया उसका क्या बिगाड़ेगी ? कब तक बिगाड़ेगी ? ऐसे महापुरुषों का बिगाड़ करनेवालों को सज्जन सद्बुद्धि देते हैं और वे ले लेते हैं तो बच जाते हैं अन्यथा प्रकृति उनको अशांति व नरकों की आग में कई जन्मों तक झोंकती रहती है । तुलसीदासजी ने कहा :

हर गुर निंदक दादुर होई ।
जन्म सहस्र पाव तन सोई ॥

(शेष पृष्ठ २३ पर)

सहज जीवन

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

बड़ा बुरा संसार है, जाने न दे प्रभु ओर ।
ज्यों-ज्यों कदम बढ़ावें हम, खींचता अपनी ओर ॥

इस संसार की माया बड़ी विचित्र है । ईश्वर के रास्ते जब तुम चलने लगोगे तो अनेक विघ्न-बाधा व मुसीबतें तुम्हारे कदम डगमगाने की चेष्टा करेगी । तुम यदि ईश्वर को नहीं मानते हो तो लोग तुम्हें नास्तिक कहेंगे और मानते हो तो आस्तिक कहेंगे । मंदिर नहीं जाते हो, पूजा-पाठ नहीं करते हो तो लोग कहेंगे कि ये ऐसे ही हैं और यदि तुम्हें भक्ति का रंग लग गया तो पत्नी कहेगी, मित्र, परिवार कहेगा कि बिगड़ गये । यदि पत्नी को रंग लग गया तो पति कहेगा कि जबसे कथा में गई, बिगड़ गई ।

मैं पूछता हूँ : 'कैसे ?' तो बतलाते हैं कि पत्नी पहले जैसा प्यार नहीं करती । पत्नी पहले जो हाड़-माँस में एक-दूसरे को सहयोग देते थे, वह अब नहीं देती ।

पत्नी को रंग लगा तो पति को विषय-विकारों में सहयोग नहीं देगी, पति को रंग लगा तो वह पत्नी के विकारों में आसक्त नहीं होगा । पति को रंग लगा तो पत्नी फरियाद करती है कि 'बिगड़ गये' और पत्नी को रंग लगा तो पति फरियाद करता है कि 'बिगड़ गई' और दोनों को रंग लगा तो कुटुम्बी कहते हैं कि 'बिगड़ गये ।' कुटुम्ब को रंग लगा तो पड़ौसी कहेंगे 'बिगड़ गये' क्योंकि ये लोग हमारी खुशामद नहीं करते ।

हकीकत यह है कि ईश्वर के रास्ते पर चलनेवाला व्यक्ति स्वतंत्र हो जाता है । ज्यों-ज्यों आत्मसुख मिलता है त्यों-त्यों नकली अपेक्षाएँ कम होती जाती हैं, खुशामदखोरी कम हो जाती है । मनुष्य का जीवन जब सच्चा व सहज होने लगता है तो जो दिखावे का जीवन जीनेवाले दोस्त थे उनको लगेगा कि यह बिगड़ गया ।

ईश्वर के रास्ते चलनेवाला व्यक्ति स्वतंत्र हो जाता है । ज्यों-ज्यों उसे आत्मसुख मिलता है त्यों-त्यों नकली अपेक्षाएँ कम होती जाती हैं, खुशामदखोरी कम हो जाती है ।

कबीरजी को भी लोग कहते थे कि तुम बिगड़ गये । 'बिगड़ गये... बिगड़ गये' प्रचार करके कबीरजी के यहाँ षड़यंत्रकारियों ने एक वेश्या भेजी । कबीरजी उस समय सत्संग कर रहे थे । भरी सभा के बीच आकर वेश्या कहती है : ''क्यों बलमा ! रात भर तो बिस्तर पर मेरे साथ थे और अभी संत होकर बैठे हो ! तुमने कहा था कि तेरा हाथ नहीं छोड़ूँगा और अभी भूल गये, बलमा !''

कबीरजी समझ गये कि यह कुप्रचार करनेवालों की भेजी हुई कठपुतली है । वे बोले : ''नहीं... हम हाथ क्यों छोड़ेंगे ?''

वेश्या : ''तो फिर चलो न मेरे साथ ।''

कबीरजी ने 'चलो' कहकर वेश्या का हाथ पकड़ लिया । आज तक तो निंदक अफवाह फैलाते थे कि 'कबीर मांसाहारी है... कबीर वेश्यागामी है... कबीर शराबी है... लेकिन आज तो सचमुच में कबीरजी ने वेश्या का हाथ पकड़ लिया और बाजार में निकल पड़े । एक हाथ में बोतल है और दूसरे हाथ में वेश्या का हाथ । कबीरजी कहते हैं :

सुनो मेरे भाइयों, सुनो मेरे मितवा...
कबीरो बिगड़ गयो रे ।
दही संग दूध बिगडयो मक्खन रूप भयो रे ।
कबीरो बिगड़ गयो रे ।

पारस संग भाई लोहा बिगडयो कंचन रूप भयो रे
कबीरो बिगड़ गयो रे ।

निंदकों को कुप्रचार का और मौका मिल गया । उन्होंने काशीनरेश को जाकर बहकाया : ''आप जिसको गुरु मानते हो, देखो जरा उसके कारनामें । आपकी बुद्धि, मति भी मलिन हो गई है । ऐसे आदमी को गुरु मानकर उसकी पूजा करने से आपके राज्य का अनिष्ट होनेवाला है । धर्म का नाश कर दिया है आपने । धर्म खतरे में है ।''

मानो धर्म मुल्ला-मौलवियों और पंडितों से ही चलता है । नहीं... धर्म मुल्ला-मौलवियों और पंडितों से नहीं चलता, धर्म तो आत्मवेत्ताओं से चलता है । जिनके जीवन में अपेक्षाएँ नहीं हैं, विषय-विकारों व निन्दा-स्तुति का जिनके चित्त पर असर नहीं होता, उन बुद्ध पुरुषों के प्रभाव से ही धर्म चलता है ।

''क्यों बलमा ! रात भर तो बिस्तर पर मेरे साथ थे और अभी संत होकर बैठे हो ! तुमने कहा था कि तेरा हाथ नहीं छोड़ूँगा और अभी भूल गये, बलमा ?''

काशीनरेश ने आदमी भेजे । कबीरजी को उसी हाल में वेश्या के साथ लाया गया । काशीनरेश कहता है : ''आज तक आपके विषय में सुना था, आज रूबरू देख रहा हूँ । मैंने एक बार आपके चरणों में मस्तक झुकाया है, इसलिये मैं आपको दंड तो नहीं देता हूँ लेकिन आपको इतना तो कहता हूँ कि आप अभी भी सुधर जाएँ तो अच्छा है । अपने यश और अपनी कीर्ति का तो ख्याल कीजिये महाराज ! इस काशीनरेश ने आपके आगे एक बार सिर झुकाया है महाराज ! छोड़ दीजिये उसका हाथ, अपनी इज्जत का ख्याल कीजिये ।''

धर्म-मुल्ला-मौलवियों और पण्डितों से नहीं चलता । धर्म तो आत्मवेत्ताओं से चलता है । जिनके जीवन में अपेक्षाएँ नहीं हैं, विषय-विकारों व निंदा-स्तुति का जिनके चित्त पर असर नहीं होता उन बुद्ध पुरुषों के प्रभाव से ही धर्म चलता है ।

कबीरजी कहते हैं : ''भाड़ में जाए इज्जत-आबरू । मुझे अपेक्षाएँ ही नहीं हैं । लोग ऐसे ही वाह-वाह कर रहे हैं तो निंदा कर देंगे तो क्या फर्क पड़ेगा ? जो 'मैं' हूँ उसमें फर्क नहीं पड़ता है और जो 'यह' है उसे कितना भी सम्हालो फिर भी टिकता नहीं, सब सपना है ।''

वेश्या कहती है : ''महाराज ! मुझे क्या पता चाँदी के चंद टुकड़ों में मैं फँस मरूँगी । इन निंदकों ने मुझे चाँदी के टुकड़ों का प्रलोभन दिया और कहा कि तुम ज़ाकर कबीर के गले पड़ो, बाकी का हम सम्हाल लेंगे । वे तो छू हो गये और इन्होंने सचमुच मेरा हाथ पकड़ लिया । अब तो मुझे यह लगता है महाराज ! कि मैं बुरा धंधा छोड़कर इनकी शिष्या बन जाऊँ, इन सत्पुरुष के सेवाकार्य में लग जाऊँ । इनके आध्यात्मिक परमाणुओं का इतना पवित्र असर...!!''

जो अनपेक्ष हैं, पवित्र हैं, दक्ष हैं, उदासीन हैं, ऊँचे आसन पर, आत्मा के राज्य में जिनकी विश्रांति है, ऐसे महापुरुष की दृष्टिमात्र से अथवा वाणी के प्रभावमात्र से ही लोभियों को, कामियों को निष्कामता की प्रेरणा मिलती है तथा महापापियों के पातक दूर होने लगते हैं ।

आपके पास वह खजाना है जिससे तीर्थ भी पावन हो सकता है । ऐसा मनुष्य आज एक बीड़ी के लिये भीख मांगता है कि 'प्लीज ! एक बीड़ी देना जरा, माचीस हो तो देना ।' अब बीड़ी तुझे क्या देगी भाई ?

जिस तम्बाकू को गधा भी नहीं खाता, उसे सुधरा हुआ आदमी पैसे देकर मुँह में आग लगाता है और निकोटिन जहर अपने भीतर भरता है । अभी वैज्ञानिकों ने परीक्षण किया । पचास ग्राम तम्बाकू में से

(शेष पृष्ठ १३ पर)

श्रीराम-वशिष्ठ संवाद

वास्तविक देव कौन ?

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

युग-युग में साकार रूप से जो प्रगट हुए, जिन्हें हम भगवान कहते हैं, जिन्होंने राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि के शरीरों में माता के गर्भ से जन्म लिया, मौत ने उनके शरीरों को भी छीन लिया । इस तरह वे आये और गये किन्तु उनके आने के पहले जो चैतन्यसत्ता थी वह उनके जाने के बाद भी है ।

भगवान राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि गये किन्तु उनके आने के पहले जो चैतन्यसत्ता थी वह उनके जाने के बाद भी है ।

मनुष्य को अपवित्र, तुच्छ, भाग्यरहित तथा दृष्ट आकृतिवाले इस शरीर के आराम के लिए विषय-भोग में कभी नहीं फँसना चाहिए क्योंकि उसमें फँसे हुए पुरुषों को चिन्तारूपी क्रूर राक्षसी खा डालती है । जैसे पत्थर का पत्थरपना अथवा घर का घरपना पत्थर और घर से अभिन्न है, वैसे ही समष्टि-व्यष्टि मन आदि भी परमात्मा से अभिन्न हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध आदि महापुरुष अभी नहीं हैं लेकिन उनका चैतन्यवपु तो अभी-भी है ।

वशिष्ठजी ने भगवान श्रीरामजी को इस बारे में अपना अनुभव 'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' के निर्वाण प्रकरण में २९ वें सर्ग में बताया है । उन्होंने भगवान श्रीरामजी से कहा :

''हे रघुनन्दन ! कैलास पर्वतों का राजा है । पहले किसी समय में उसी पर्वत पर भगवान महादेव की पूजा करता हुआ मैं गंगाजी के किनारे आश्रम बनाकर रहता था । चारों ओर सिद्धों के समूह रहते थे । मैं उनसे विचार-विनिमय करके शास्त्रीय दुरुह तत्त्वों का अनुशीलन करता था तथा शिष्यों को ब्रह्मविद्या का दान करता था । इस प्रकार बहुत-सा समय व्यतीत हो गया ।

हे रघुकुलदीपक राम ! एक बार की बात है । श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि थी और रात्रि के प्रथम भाग में पूजा, जप आदि करके मैं ध्यान में निमग्न हो गया । तब मैंने देदीप्यमान प्रकाश देखा । वह प्रकाश सैंकड़ों बादलों के तुल्य सफेद एवं असंख्य चन्द्रबिम्बों के सदृश चमकीला था । उस तेज की चकाचौंध से दिशाओं के समस्त कुँज चमक उठे । उस प्रकाश को देखते-देखते मैं भावविभोर हो गया और मुझमें अष्टसात्त्विक भाव जाग उठे ।

शरीर में रोमांच होने लगा । आँखों से हर्ष के आँसू बहने लगे । उस प्रकाश में मैंने गौरीशंकर भगवान चंद्रशेखर एवं माँ उमा को आते हुए देखा । उन्हें देखकर मैं अत्यंत आनंदित हो उठा । साक्षात् चंद्रशेखर जो माँ उमा सहित पधारे थे उनको मैंने सिंहासन पर बिठाया और अर्घ्य-पाद्य से उनका पूजन किया । अनेक मन्दार पुष्पों की अंजलियाँ समर्पित की और स्तोत्रों से शिवजी का अभ्यर्चन किया । फिर मैंने और अरुन्धती ने प्रणाम किया ।

मैंने अरुन्धती एवं माँ उमा से कहा कि ' आप दोनों ज्ञानचर्चा कीजिए । मैं भगवान शंकर से कुछ शंका-समाधान करना चाहता हूँ ।' माँ उमा अरुन्धती के साथ गईं । भगवान शंकर मेरी ओर देखते हुए स्मित बिखेर रहे

थे ।

हे रामचंद्रजी ! मैंने शिवजी से कहा :

'हे देव ! हे कृपासिंधु ! आपके दर्शन से मेरे भीतर के और बाहर के दोनों नेत्र पावन हुए ।''

तब भगवान शंकर ने मुझसे पूछा : 'ऋषि ! तुम कैसे हो ? कुशल से तो हो ? गंगाजी तुम्हें मधुर जल तो देती है ? यहाँ के वृक्ष तुम्हें फल-फूल तो देते हैं ? हिंसक पशु आदि तुम्हारी साधना में विघ्न तो नहीं डालते हैं न ? तुमने प्राप्त वस्तु प्राप्त तो कर ली है न ? और सांसारिक भय शान्त तो हो रहे हैं न ?''

हे रामजी ! जब शिवजी ने स्नेह से मुझे ऐसा पूछा तब मैंने विनययुक्त वाणी से निवेदन किया :

'हे महेश्वर ! देवाधिदेव ! हे त्रिलोचन ! हे साम्ब-सदाशिव ! आपका एकबार चिन्तन करनेवाला व्यक्ति त्रिविध ताप से पार हो जाता है तो जो आपमय हुआ हो उसको त्रिविध ताप कैसे सता सकते हैं ? आपकी कृपा से मैं कुशलपूर्वक हूँ । मेरी साधना निर्विघ्न चल रही है । लेकिन हे देव ! मैं पूछना चाहता हूँ कि वास्तविक उपासना और भक्ति क्या है ? देव वास्तव में कौन है एवं वह देवार्चन विधान किस तरह का है, जो उद्वेगनाशक, विकाररहित, समस्त पापों का विनाशक तथा समस्त पुण्यों का अभिवर्धक है ? उसे प्रसन्नमति से आप मुझे कहिए ।'

तब कृपालु भगवान शंकर ने कहा : 'हे ब्रह्मज्ञानियों में अग्रगण्य मुनीश्वर ! मैं तुमसे सर्वश्रेष्ठ वह देवार्चन विधान कहता हूँ जिसका अनुष्ठान करने से मनुष्य तत्काल ही मुक्त हो जाता है । जो आदि और अन्त से रहित, वास्तविक ज्ञानस्वरूप है, वही 'देव' कहा जाता है । सबको सत्ता-स्फूर्ति देनेवाला, सत्स्वरूप सच्चिदानंदघन ब्रह्म ही 'देव' शब्द का वाचक है । हे महर्षे ! ज्ञान, समता और शान्ति रूप पुण्यों द्वारा ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की जो पूजा की जाती है उसीको आप वास्तविक देवार्चन जानिये ।

हे महर्षे ! ब्रह्माजी भी वास्तविक देव नहीं हैं और विष्णु भी वास्तविक देव नहीं हैं । हे वशिष्ठजी ! मैं तुम्हें कहता हूँ कि मैं शंकर भी वास्तविक देव नहीं हूँ । जिस देव से हम तीनों प्रकाशित हैं वही सच्चिदानंद वास्तविक देव है । हम तो केवल उसकी प्रतिमामात्र हैं ।''

तुम्हारा शरीर वास्तव में तुम नहीं हो । चैतन्य से संबंध रखने की अंत:करण की जो क्षमता है, वह यदि टूट जाये तो वास्तविक लगती हुई यह देह नहीं रहती है । इसलिए आप सब जो यहाँ दिख रहे हैं वह अवास्तविक है । लेकिन जिससे दिखता है वह वास्तविक है ।

यह शरीर पाँच कोषों का बना हुआ है : अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय । इन कोषों से पार जो है, उसके होने के कारण यह पँचकोष का शरीर भी प्यारा लग रहा है । वह जो पँचकोषातीत है वह कैसा है ?

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्य: सर्वगत: स्थाणुरचलोऽयं सनातन: ॥

यह अच्छेद्य है, अदाह्य, अक्लेद्य और नि:संदेह अशोष्य है। वह नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहनेवाला

(शेष पृष्ठ ४ पर)

> *मैंने देदीप्यमान प्रकाश देखा । वह सैंकड़ों बादलों के तुल्य सफेद एवं असंख्य चन्द्रबिम्बों के सदृश चमकीला था । उस तेज की चकाचौंध से दिशाओं के समस्त कुँज चमक उठे । मैं भावविभोर हो गया और मुझमें अष्टसात्त्विक भाव जाग उठे ।*

> *हे साम्ब-सदाशिव ! आपका एकबार चिन्तन करनेवाला व्यक्ति त्रिविध ताप से पार हो जाता है तो जो आपमय हुआ हो उसको त्रिविध ताप कैसे सता सकते हैं ?*

जीवन का कार्य

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

सुखी सुखी हम सब कहें, सुखमय जानत नाहीं ।
सुख स्वरूप आतम अमर, जो जाने सुख पाहीं ॥

प्रत्येक मनुष्य स्थिर सुख चाहता है, शाश्वत सुख चाहता है, पूर्ण सुख चाहता है लेकिन शाश्वत सुख, पूर्ण सुख मिले कैसे ? इस पर कोई विचार नही करता । कोई संत आशीर्वाद दे दें और कहें कि 'तुम एक वर्ष तक सुखी रहो' तो हमें तुरन्त ही विचार आएगा कि दूसरे वर्ष क्या ? संत यदि ऐसा आशीर्वाद दें कि 'जब तक जियो तब तक सुखी रहो, बाद में नर्क में पड़ो' तो यह भी अच्छा नहीं लगेगा क्योंकि मरने के बाद भी नर्क नहीं चाहते । पूर्ण सुख मिले, यह प्राणीमात्र की इच्छा है, फिर पूर्ण सुख मिलता क्यों नहीं ?

प्रत्येक मनुष्य स्थिर सुख, शाश्वत सुख, पूर्ण सुख चाहता है लेकिन शाश्वत सुख, पूर्ण सुख मिले कैसे ? इस पर कोई विचार नहीं करता ।

हम अपूर्ण संसार के क्रियाकलाप में अटक गये हैं और अपूर्ण संसार के अल्पज्ञान को ही पूर्ण मानते हैं । 'मुझे यह बनाना आता है... मुझे ऐसा करना आता है' इस अल्पज्ञान में ही धन्यता का अनुभव करते हैं । लेकिन जिसकी सत्ता से विचार उठते हैं, जिसकी सत्ता से सब क्रियाकलाप होते हैं, वह परमात्मा ही पूर्ण है, बाकी सब अपूर्ण है । जब तक उस पूर्ण परमात्मा को पहचाना नहीं, उस पूर्ण परमात्मा का ज्ञान पाया नहीं, तब तक पूर्ण सुख नहीं मिल सकता ।

जब तक उस पूर्ण परमात्मा को पहचाना नहीं, उस पूर्ण परमात्मा का ज्ञान पाया नहीं, तब तक पूर्ण सुख नहीं मिल सकता ।

अवन्तिका नगरी के राजा भोज हीरे संग्रह करने के शौकीन थे । एक बार उन्हें अपने खजाने में मौजूद हीरों की कीमत जानने की इच्छा हुई । जौहरियों को बुलाया गया । वे राज्य की तिजोरी के समस्त हीरों का मूल्य तो परख सके लेकिन वहाँ मौजूद पूर्वजों के समय के एक हीरे का मूल्य बताने में असमर्थ रहे । राजा को तो उस हीरे का मूल्य जानना ही था । उसने नगर में घोषणा करवाई कि जो जौहरी हमारे पूर्वजों के समय के हीरे का मूल्य बता सकेगा उसको बढ़िया इनाम दिया जायेगा ।

घोषणा सुनकर एक अस्सी वर्षीय जौहरी राजदरबार में आया और हीरे का मूल्य परखने लगा किन्तु उसे कुछ समझ में न आया । 'मैं पूनम की रात को फिर आऊँगा' कहकर वह चला गया ।

पूनम की रात को आकर भी वह हीरे की कीमत न आँक सका । उसने राजा से दो दिन की और मोहलत माँगी । दो दिन बाद आकर उसने एक लाख रूपये की कीमतवाले एक सौ हीरे मंगवाये और एक-एक करके ९९ हीरे उस हीरे के करीब रखे । जब १०० वाँ हीरा उसके करीब रखा तो जौहरी के चेहरे पर आनंद छा गया । उसने कहा :

''राजन् ! मैं तुम्हारे हीरे की कीमत जान चुका हूँ । पहले मुझे ऐसा लगा था कि यह चंद्रमणि है । इसलिये मैं पूनम की रात को आया था । चंद्रमणि होता तो चन्द्रकला में इसमें कुछ विशेषता उत्पन्न होती लेकिन यह चंद्रमणि नहीं

था । आज जब मैंने ९९ हीरे इसके करीब रखे और जैसे ही १०० वाँ हीरा इसके करीब रखा तो इसका तेज दुगना हो गया और १०० वें हीरे का तेज यह न सह सका । अत: इस हीरे की कीमत ९९ लाख रूपया हुई ।''

"राजन् ! मुझे तो यही इनाम उचित लगता है कि जौहरी की चमकीली टाल पर सात जूते मारे जाएँ ।''"

जौहरी की बात सुनकर राजा प्रसन्न हुए । मंत्री को आज्ञा दी : ''यथायोग्य इनाम देकर जौहरी का सम्मान किया जावे ।''

मंत्री ने अनुरोध किया कि राजा स्वयं यथोचित इनाम देवें लेकिन राजा ने आज्ञा दी कि मंत्री ही इनाम देवे तब मंत्री ने कहा : ''राजन् ! मुझे तो यही इनाम उचित लगता है कि जौहरी की चमकीली टाल पर सात जूते मारे जावे ।''

मंत्री की बात सुनकर सारी सभा में सन्नाटा छा गया । राजा भोज भी मंत्री की बात सुनकर रुष्ट होकर बोले : ''तुझे जौहरी से ईर्ष्या हो रही है । मेरा धन इनाम के रूप में देने में तुझे दुःख हो रहा है ।''

मंत्री कहता है : ''राजन् ! आप इसे पूरा राज्य दे दें तब भी मुझे कोई एतराज नहीं है, लेकिन आपने मुझे कहा - 'जो उचित हो, वह इनाम दो' तो मुझे तो इसके सिर पर सात जूते मारना उचित लगता है क्योंकि इसे मनुष्य जन्म मिला, अच्छी बुद्धि मिली, भारत में जन्म मिला और परमात्म-हीरा परखने के लिए जो बुद्धि मिली थी उसे इसने सारा जीवन चमकीले कंकड़-पत्थर परखने में लगा दी । मरने के बाद परलोक में यह हीरे परखने की विद्या काम में नहीं आएगी ।''

मंत्री ने जौहरी से पूछा : ''तुम्हारी इस विद्या से तुमको मुक्ति मिलेगी ? आत्मसुख मिलेगा ?''

जौहरी को प्रकाश हुआ कि 'धिक्कार है मुझे ! मैंने पेटपालु कुत्ते की नाईं हीरे परखने में ही जिन्दगी खर्च कर दी । जो भोग व मोक्ष दोनों दिलाये ऐसे सत्यस्वरूप आत्मा को पहचानने में जो मति लगानी चाहिए वह मैंने दुःखद संसार के पीछे खर्च कर दी । धनभागी वे हैं जो युवानी में ही संत-सान्निध्य पाते हैं एवं अपनी आत्मा को पाने में अपनी मति लगाते हैं । जीवन में यदि आध्यात्मिक विद्या न हो तो जीव संसार में भी आनंद से नहीं जी सके और भवबंधन से भी नहीं छूट सके । ऋषियों ने बहुत गहराई से इस बात का चिंतन किया है ।

धनभागी वे हैं जो युवानी में ही संत-सान्निध्य पाते हैं एवं अपनी आत्मा को पाने में अपनी मति लगाते हैं । जीवन में यदि आध्यात्मिक विद्या न हो तो जीव संसार में भी आनंद से नहीं जी सके और भवबंधन से भी नहीं छूट सके ।

आज चारों ओर अशांति छा रही है, संसार में खींचातानी बढ़ रही है, दुःख बढ़ रहे हैं, इसका कारण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से सुख लेना चाहता है । पिता चाहता है कि पुत्र सुख दे, पुत्र चाहता है कि पिता सुख दे और पत्नी चाहती है कि पति सुख दे । हर कोई सुख का भिखारी बना बैठा है लेकिन सुख लेने की चीज नहीं, सुख देने की चीज है । हम जितना दूसरों को सुख दें, उतना हमारा भीतर का सुख बढ़ता जाता है । दूसरों से सुख लेने की इच्छा करें तो हमारा सुख भीतर दब जाता है ।

आज सभी बड़े में बड़ी गलती यह कर रहे हैं कि सुख का कारण बाहर के व्यक्ति या वस्तु को मानते हैं । सबकी वृत्तियाँ बहिर्मुख हो गई हैं इसीलिये ऐसा लगता है कि अमुक वस्तु मिले तो सुखी होऊँ, अमुक व्यक्ति मिले तो सुखी होऊँ और दुःख का कारण भी ये विचार ही हैं । कोई वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति हमें सुखी नहीं कर सकती है अत: सुख लेने की इच्छा को छोड़कर दूसरों को सुख देने का विचार करो । जो दूसरों को सुख देगा वह दुःखी नहीं होगा । सुख देनेवाला तो सुख का दाता कहा जाता है, उसे कौन

दु:खी कर सकता है ?

भगवान श्रीकृष्ण ने सबको सुख दिया है, सुख लेने की कभी इच्छा नहीं की । आप भी धन, मान, सुख लेने की इच्छा न रखो अपितु देने की इच्छा रखो । इससे धन, मान, सुख बढ़ेगा । उस अन्तर सुख में आप ज्यों-ज्यों अभ्यस्त होते जाएँगे, त्यों-त्यों वह अधिकाधिक प्रकट होता जाएगा और पूर्ण सुख की प्राप्ति कराएगा ।

दुनिया के अल्प ज्ञान और अल्प सुख के पीछे जीवन नष्ट करने के बदले उस सुखस्वरूप आत्मा को पहचानने का यत्न करना चाहिये, जिससे पूर्ण सुख प्राप्त होता है ।

❀

तत्त्वदृष्टि

जिसे आत्मदृष्टि प्राप्त हो चुकी है वह कितना खुशनसीब होता है ! उसे तो सदा प्रिय ही प्रिय मिलता है । कितना मजा आता होगा उसको ! सचमुच में उत्तम भोक्ता तो वही है, उत्तम जीवन तो उसीका है जिसकी नजर अपने प्रिय पर है । गहने भिन्न-भिन्न हैं पर स्वर्ण तो एक है ।

आज से करीब ३० साल पहले की बात है । अहमदाबाद के एक सेठ ने तेल के व्यापार में थोड़ा पैसा कमा लिया तो ६०० रूपये खर्च करके उसने छ: तोला सोने की हनुमानजी की मूर्ति बनवा ली । थोड़ा और कमाया तो ४७५ रूपयों में रामजी की पाँच तोला की मूर्ति बनवा ली ।

जब तेल के धंधे में मंदी आई तो वह दोनों मूर्तियों को माणेकचौक में बेचने गया । सुनार ने कहा : ''हनुमानजी की मूर्ति के ६०० रूपये देंगे और रामजी के ४७५ देंगे ।''

उसने कहा : ''अरे ! इतना तो समझ कि रामजी स्वामी हैं और वह हनुमान तो दास है, सेवक है । दास के ६०० और स्वामी के केवल ४७५ रूपये ?''

सुनार ने कहा : ''दास और स्वामी को तुम ले जाओ । मुझे तो सोना दे दो, बस ! इतना तोला सोना... ।''

सुनार की नजर सोने पर है और ग्राहक की नजर घाट पर । ज्ञानी की नजर आत्मा पर है और हम अज्ञानी की नजर शरीर पर है, बस इतना फर्क है । श्रीकृष्ण हमारी नजर आकृतियों से हटाकर तत्त्व की ओर ले जाते हैं । जिसकी नजर मूल धातु, मूल परमात्मतत्त्व पर है, वह सदा खुश है । उसका कभी कुछ नहीं बिगड़ता । मूलतत्त्व में कभी कमी होती नहीं और कृत्रिम को कितना भी सम्हालो, सम्हलता ही नहीं ।

> **सुनार की नजर सोने पर और ग्राहक की नजर घाट पर । ज्ञानी की नजर आत्मा पर है और हम अज्ञानी की नजर शरीर पर है, बस इतना फर्क है ।**

नाशवान् पदार्थों का कितना भी संयोग करो लेकिन वे सदा रहते नहीं और अविनाशी आत्मा कभी छूटता नहीं । इसका ज्ञान हो जाए तो महाराज ! बेड़ा पार हो जाए ।

❀

(पृष्ठ ८ का शेष)

निकोटिन निकालकर उसका इंजेक्शन कुत्ते को लगाया तो तीन मिनट में कुत्ता मर गया, मेढ़क को निकोटिन् मला तो उसकी भी मृत्यु हो गई ।

ऐसे जहरीले निकोटिनयुक्त तम्बाकू और वीर्य तथा पाचनशक्ति को कमजोर करनेवाली सुपारी एवं अन्यान्य रासायनिक पदार्थों के मिश्रण से बनने वाले पान-मसाले को आज का इन्सान अंधाधुंध मात्रा में खा रहा है । फलत: कैंसर जैसे अनेक भयानक रोगों से वह ग्रस्त हो रहा है । ये सारी अनुचित अपेक्षाएँ हैं ।

इन अनुचित अपेक्षाओं का परित्याग करके तुम्हारा मूल लक्ष्य उस आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार करना है, यह जानकर आज से नहीं, अभी से ही ईश्वर के रास्ते पर चल पड़ोगे तो आपका जीवन तो धन्य हो ही जाएगा, साथ ही जिस पर आपकी मीठी नजर पड़ेगी वह भी धन्यता का अनुभव करने लगेगा ।

❀

आत्मज्ञान ही सर्वोत्तम

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

लोहे का एक टुकड़ा अगर मिट्टी में पड़ा हो तो उसे जंग अवश्य लगेगा । आप उसकी चाहे कितनी भी संभाल करें, उसे अलमारी में रख दें फिर भी हवाएँ वहाँ भी उसे जंग चढ़ा देती ज़ग हैं। उसी लोहे के टुकड़े को पारस से स्पर्श करवा दो । फिर चाहे उसे आप अलमारी में रखो, चाहे कीचड़ में डाल दो। अब उसको जंग नही लगेगा । उसी प्रकार तुम्हारे मन को एकबार आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करा दो । फिर चाहे उसे समाधि में बिठाओ चाहे सत्संग में रखो या संसार के व्यवहार में लाओ । वह जहाँ भी रहेगा, अपने-आप में पूरा । वह निर्लेप नारायणस्वरूप में निमग्न रहेगा ।

ऐसा ज्ञान जब तक नहीं मिला, तब तक कोई बड़े से बड़ी सिद्धि मिल जाय, दूसरों को फूँक मारकर उड़ाने की शक्ति भी आ जाय फिर भी आत्मज्ञान के बिना वह सब व्यर्थ है । आप यहाँ बैठे-बैठे हजारों मील दूर के व्यक्ति को ठीक कर सकते हो, उससे आप जो चाहे वह काम भी करवा सकते हो । आप में वह संकल्पशक्ति खिल सकती है । उसकी युक्तियाँ होती

हैं । किन्तु यह भी कोई मंजिल नहीं है ।

आप किसी आदमी के ऊपर कोई संकल्प डाल दो, वह पूरे जीवन उसी प्रकार काम करता रहेगा... ऐसा भी हो सकता है । किसीको कह दो 'सेठ बन जा ।' वह सेठ होकर ही रहेगा । किसीको कह दो 'तू मंत्री बन जा ।' संभावना न हो फिर भी हजारों विघ्नों को चीरकर वह मंत्री बन सकता है । लेकिन यह भी कोई ज्ञान का फल नहीं है । यह भी कोई आखिरी चीज नहीं है । ऐसा कोई सत्शास्त्र नहीं है, ऐसा कोई सद्ग्रंथ नहीं है जिसमें ब्रह्मज्ञान की महिमा न हो । भागवत, रामायण, शिवसंहिता, देवीभागवत, चाहे कोई भी सत्शास्त्र लो । सत्य तो ब्रह्मज्ञान ही है । अगर वह सत्य किसी शास्त्र में नहीं है तो उसे सत्शास्त्र नहीं कहा जा सकता । उसको किताब कहा जायेगा । सत्य का जिसमें बयान हो उसे ही सत्शास्त्र कहते हैं ।

भोले बाबा एक मस्त संत हो गये जिन्होंने वेदान्त छन्दावली लिखी है। उनकी एक शिष्या थी जयादेवी। जयादेवी ने स्वामी अखंडानंद सरस्वतीजी से पूछा :

''स्वामीजी ! द्वैत की तो निंदा है, भोगों की तो निंदा है मगर कहीं पर किसी भी शास्त्र में अद्वैतज्ञान की निंदा देखी गयी है ?''

स्वामी अखंडानंदजी ने कहा : ''मेरे जीवन में मैंने ऐसा कोई शास्त्र नहीं पढ़ा जिसमें कहीं अद्वैतज्ञान की निंदा हो। भगवान राम, भगवान कृष्ण, आद्यशंकराचार्य आदि सब अद्वैतज्ञान की महिमा का वर्णन करते हैं ।''

जितना तुम एकांत में आत्मपथ की यात्रा करोगे उतना ही तुम संतों को समझने की योग्यता पाओगे । जितनी जितनी तुम्हारी साधना बढ़ेगी उतनी ही तुम्हें अपनी वास्तविक बड़ाई दिखेगी, महिमा दिखेगी और जितना साधना से दूर रहोगे उतना पराधीन बने रहोगे ।

स्वामी रामतीर्थ कहते थे : ''मैंने जैसा किया वैसा तो कोई अंधा भी न करे । घर में ही अपने गृहस्वामी को खो बैठा था ।''

वो थे न मुझसे दूर न मैं उनसे दूर था ।
आता न था नजर तो नजर का कसूर था ॥

(शेष पृष्ठ १७ पर)

सत्संग निधि

अंतर-आलोक

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

जगत् तीन प्रकार के हैं- एक स्थूल यानी लौकिक जो हम इन आँखों से देख सकते हैं, इन कानों से सुन और इस नासिका से सूँघ सकते हैं । दूसरा सूक्ष्म यानी अलौकिक जगत् । तीसरा है कारण जगत् । दृष्टि भी तीन प्रकार की होती है- एक स्थूल दृष्टि जिसे चक्षु-दृष्टि कहते हैं । दूसरी मन:दृष्टि और तीसरी वास्तविक दृष्टि, वह ज्ञानी की होती है ।

लौकिक जगत् हम इन आँखों से देख सकते हैं किन्तु अलौकिक जगत् को देखने के लिए मन:चक्षु चाहिए । हम किसी साधना के द्वारा गुरु या इष्ट के गहरे चिंतन में आ जाते हैं तो हमें ध्यान के द्वारा उनके एवं अन्यान्य देवताओं के दर्शन होने लगेंगे । वे लौकिक नहीं अलौकिक होंगे । कभी शब्द सुनाई पड़ेगा, तो कभी झंकार सुनाई देगी, बाजे, नगाड़े आदि सुनाई पड़ेंगे । कभी अलौकिक सुगंध आने लगेगी । इस प्रकार के अनुभव का तात्पर्य यह है कि मन को बाह्य चक्षु से हट कर अंतर-चक्षु में प्रवेश मिला है । अंतर-चक्षुवाले साधक ही एक दूसरे को समझ सकते हैं । दूसरे अनजान लोग तो उसकी मजाक उड़ाएँगे ।

साधक को अपने जीवन के आध्यात्मिक अनुभव अत्यंत बहिर्मुख आदमी को नहीं बताने चाहिए क्योंकि वह तर्क से साधक के अनुभवों को ठेस पहुँचा सकता है । शहर के आदमी में तर्क करने की योग्यता ज्यादा है और साधक का विचार कुटिल तर्क के जगत में नहीं, शुद्ध भाव के जगत में होता है । भाववाला अगर बौद्धिक जगत्वालों से टकराता है तो उसके भाव में शिथिलता आ सकती है ।

घाटवाले बाबा कहते थे : ''अपने आध्यात्मिक अनुभव साधारण लोगों के बीच, साधारण आदमी को नहीं कहने चाहिए, अगर कह देता है तो अनुभव बंद हो जाता है ।''

प्राय: ऐसा होता है कि सत्कर्म, शुभ कर्म करने में एवं सदाचार से रहने में साधारण साधक को तकलीफ होती है । जब वह समाज में, ऑफिस में जायगा तो पच्चीस-तीस आदमी रिश्वतखोर हैं और साधक ईमानदार है । बहुसंख्या रिश्वतखोरों की है और साधक अकेला पड़ जायेगा तो पच्चीस आदमी उसको मूर्ख मानेंगे । उन बिचारों को पता नहीं कि अपनी जिंदगी, अपना मन मलिन करके, जो कुछ करते होंगे उसका फल चाहे कितना ही कमा लें लेकिन भोग तो उतना ही पाएँगे जितना भाग्य में होगा । भाग्य में जितना अन्न-जल है उतना ही मिलेगा । बाकी का जो भी अशुद्ध या गलत रास्ते से कमाया हुआ धन-धान्य है, वह दिखने भर का है । उसका फल अशांति, भय, शोक, दु:ख ही होता है ।

> *साधक को अपने जीवन के आध्यात्मिक अनुभव अत्यंत बहिर्मुख आदमी को नहीं बताने चाहिए क्योंकि वह तर्क से साधक के अनुभवों को ठेस पहुँचा सकता है ।*

मैं एक बार 'स्विस एअर सर्विस' में सफर कर रहा था । पहले दर्जे की टिकट मँगवाई थी । मेरे मना करने पर आखिर में दूसरे दर्जे की टिकट करवाई । छ: आठ घंटे बैठने के दस हजार रूपया ज्यादा लेते हैं तो सुविधा भी ज्यादा होती है । हवाईजहाज की परिचारिकाएँ यहाँ से वहाँ कभी कुछ लेकर, कभी कुछ लेकर सेवा में घूमती रहती हैं । वहाँ जो बैठे थे वे लोग खूब खाते-पीते थे । परिचारिकाएँ मेरे पास भी आती थी परंतु मैं मना कर देता था । वे फिर भी आग्रह करती थी कि आप कुछ तो लीजिए, कुछ तो लीजिए । मैंने सुन रखा था

कि नारंगी का रस मशीनों से निकलता है, उसमें किसीकी भी छुआछूत नहीं होती है । मैंने नारंगी के रस का संकेत किया तो वह ढ़ाई लिटर का केन ले आई । मैंने थोड़ा-सा लिया और बाकी का वापिस लौटा दिया । परिचारिका ने कहा कि, 'आप नहीं पीएँ फिर भी भले यह आपके पास पड़ा रहे ।' उन लोगों को मुझ पर दया आ रही थी कि इतने-इतने व्यंजन, तरह-तरह की वस्तुएँ होते हुए भी ये बाबाजी कुछ नहीं खा रहे हैं । दुनियादार जिसे first Class समझते हैं, उसको साधक समझता है कि यह आहार तन-मन को अशुद्ध करनेवाला एवं तमोगुण बढ़ानेवाला है । यह बात साधक जानता है फिर भी कई बार मन उसे धोखा दे देता है कि, 'चलो थोड़ा-सा 'हरि ॐ' करके या नारायण-नारायण' करके खा लें ।'

साधक समझता है कि यह आहार तन-मन को अशुद्ध करनेवाला एवं तमोगुण बढ़ानेवाला है । यह बात साधक जानता है फिर भी कई बार मन उसे धोखा दे देता है कि, 'चलो थोड़ा-सा 'हरि ॐ' करके या 'नारायण नारायण' करके खा लें ।'

यहाँ आदमी को लिहाज नहीं करना चाहिए अन्यथा अंगुली देने पर पूरा हाथ ग्रसित हो जायेगा और पतन के रास्ते गिर पड़ेगा ।

किसी मुल्ला की प्रसिद्धि दूसरे मुल्ला-मौलवी सह न सके । उन्होंने बादशाह से झूठी शिकायत कर दी कि इनका किसी स्त्री के साथ गलत संबंध है । बादशाह ने देखा कि यह मुल्ला बहुत प्रसिद्ध है । उसे अगर दंड, सजा देंगे तो राज्य में अंधाधुंधी फैल जाएगी और इनकी भी बददुआ लगेगी । राजा ने वजीर से सलाह मशविरा किया । वजीर ने राजा को 'साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे' ऐसा उपाय बताया ।

राजा ने व्यवस्था कर दी । नीरव, शांत सन्नाटे में चार कमरे सजाकर मुल्ला को कहा गया कि रात भर आप यहाँ रहेंगे और इन चार कमरों में से एक कमरे का उपयोग जरूर करेंगे तो बादशाह आप पर प्रसन्न हो जायेंगे और आपको निर्दोष साबित करेंगे । यदि आपने ऐसा नहीं किया तो फाँसी की सजा दी जाएगी ।

उन चारों कमरों में से एक कमरे में फाँसी लटक रही थी । दूसरे में वेश्या बैठी हुई थी । तीसरे में भिन्न-भिन्न प्रकार का भुना हुआ माँस था । चौथे में शराब की बोतलें रखी हुई थी । मुल्ला ने दो-चार चक्कर लगाये । रात बीती जा रही थी । क्या किया जाए ? उसने सोचा दारु में तो पानी होता है । पानी से तो हाथ भी साफ किये जा सकते हैं । जरा-सा पी लूँगा तो राजा खुश हो जाएगा ।

उसने जरा-सा पी लिया । मन पर उसका प्रभाव पड़ा । मन ने तर्क दिया कि जरा-सा दूसरा घूँट लें तो क्या है ? उसने थोड़ा-थोड़ा करके पीना चालू कर दिया । उसे नशा चढ़ने लगा । मन, बुद्धि, प्राण, नीचे के केन्द्रों में आए । अब उसे जोरों की भूख लगी । उसने सोचा कि खुदाताला ने खाना रख ही दिया है तो खाने में क्या हर्ज है ? ऐसा समझकर तला हुआ, भुना हुआ, उत्तेजक, जो अपवित्र था, वह खाया तो सेक्स्युअल केन्द्र, कामकेन्द्र उत्तेजित हुए । उसका मन और धोखा देने लगा कि वह बेचारी कब से बैठी है । उसके पास जाऊँगा तो वह खुश हो जाएगी । उसे खुश करना यह भी तो पुण्य कर्म है ।

एक कमरे में फाँसी लटक रही थी । दूसरे में वेश्या बैठी हुई थी । तीसरे में भिन्न-भिन्न प्रकार का भुना हुआ माँस था । चौथे में शराब की बोतलें रखी हुई थीं । मुल्ला ने दो-चार चक्कर लगाये । रात बीती जा रही थी ।

वह वेश्या के साथ पुण्यकर्म करने गया ।

मन कैसा बेवकूफ बना देता है ! इसमें पुरुषों को

ज्यादा नुकसान होता है । स्त्री का रजनाश होता है और पुरुष का वीर्यनाश होता है । साथ-साथ में अपने शरीर के जो नुकीले हिस्से हैं उसमें से विद्युत बाहर निकलती रहती है । जो आदमी ज्यादा हिलचाल, हरकत करता है वह ज्यादा थक जाता है ।

शरीर के नुकीले हिस्सों, हाथ की ऊँगलियों, पैर की ऊँगलियों से हमारी विद्युत के कुछ न कुछ कण बाहर निकलते ही रहते हैं । इसलिए ध्यान में अपने दोनों हाथ मिला कर बैठना चाहिए ताकि विद्युत का एक वर्तुल बन जाए । ध्यान में बैठा हुआ आदमी ध्यान से उठने पर अपने को पहले से ज्यादा उत्साहित आनंदित, शक्तिशाली और प्रसन्न पाता है । पुरुष जब संसार की कामुकता का व्यवहार करता है तब उसकी जननेन्द्रिय भी तो नुकीली होती है उससे उसका वीर्य और विद्युततत्त्व दोनों नष्ट होते हैं । इसलिए पुरुष स्त्री की अपेक्षा अपने को ज्यादा थका हुआ महसूस करता है ।

ध्यान में अपने दोनों हाथ मिलाकर बैठना चाहिए ताकि विद्युत का एक वर्तुल बन जाए । ध्यान में बैठा हुआ आदमी ध्यान से उठने पर अपने को पहले से ज्यादा उत्साहित आनंदित, शक्तिशाली और प्रसन्न पाता है ।

मुल्ला ने दारु भी पी लिया, माँस भी खा लिया, वेश्या-गमन भी कर लिया । वेश्या ज्यादा नाज-नखरे वाली थी तो विशेषरूप से उसकी विद्युतशक्ति और ओज नष्ट हुआ । अब शरीर का और मन का कोई बल बचा नहीं । बादशाह को क्या मुँह दिखाना ? वह अपने ही हीनभाव से पीड़ित होकर चौथे कमरे में फाँसी खाकर मर गया ।

शुरूआत कहाँ से हुई ? 'जरा-सा यह पी लूँ... यह खा लूँ... जरा-सा यह चख लूँ...'

मन को संतों के तरफ, इष्ट के तरफ, सेवा के तरफ बढ़ाया तो और सेवकों का सहयोग मिल जाता है । उपासना की तरफ बढ़ाया तो और उपासकों का सहयोग मिल जाता है । इस तरह थोड़ा-थोड़ा बढ़ते बढ़ते वह नारायण के साथ मिल जाता है । तमस् से मिलता है तो नीची योनि में जाता है । साधकों के संग में आता है तो इष्ट का जो अनुभव है 'अहम् ब्रह्मास्मि वह अपना अनुभव हो जाता है । गुरु का, श्रीकृष्ण का, भगवान शिव का, श्रीराम का अनुभव अपना अनुभव हो जाता है । भोगियों के, हल्के लोगों के संग में आता है तो उसे कीट-पतंग, कुत्ता, गधा आदि नीची योनियों में गिरा दिया जाता है ।

सुख, आनंद, प्रसन्नता तुम्हारा वास्तविक स्वभाव है । विद्रोह अशांति, बार-बार जन्मना और मरना तुम्हारा स्वभाव नहीं है । कोई भी जीव नहीं चाहता कि 'मैं मरूँ... मैं दुःखी होऊँ... वृक्ष, गधा, घोड़ा, कीट होऊँ...' आपको कोई कह दे : ''आइये हाड-माँस, रक्त, मवाद, थूँक, आइये...'' तो आपको अच्छा नहीं लगेगा । बोलनेवालों के प्रति घृणा, नफरत हो जाएगी । उसके बदले कोई कह दे : ''आइये सच्चिदानंद, आइये आत्मदेव...'' तो आपको अच्छा लगेगा क्योंकि आपकी जात प्रभु की जात है... आप चैतन्य हो, आत्मा हो, आनंदस्वरूप हो, सुखस्वरूप हो ।

अत: अपने अंत:प्रसाद, अंत:सुख अन्तरात्मा को पाकर पूर्ण सुख और मुक्ति का अनुभव कर लो ।

(पृष्ठ १४ का शेष)

ऐसी नजर पा लो तो जीने का भी मजा आयेगा और मरने का भी मजा आयेगा । मौन का भी मजा आयेगा और बोलने का भी मजा आयेगा । नाचने का और भागने का भी मजा आयेगा । फिर सब मजा ही मजा ! आनंद ही आनंद !

जितना तुम एकांत में आत्मपथ की यात्रा करोगे उतना ही तुम संतों को समझने की योग्यता पाओगे । जितनी जितनी तुम्हारी साधना बढ़ेगी उतनी ही उतनी तुम्हें अपनी वास्तविक बड़ाई दिखेगी, महिमा दिखेगी और जितना साधना से दूर रहोगे उतना पराधीन बने रहोगे । जितना-जितना तुम अन्दर की साधना से दूर रहोगे उतने ही उतने गुलाम बने रहोगे । जितना भीतर की ओर आओगे उतने ही मालिक बनोगे ।

पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में साधकों द्वारा पूछे गये प्रश्न

साधक : स्वामीजी ! ईश्वरप्राप्ति के मार्ग में विघ्न-बाधाएँ क्यों आती हैं ?

पू. बापू : अरे भैया ! बचपन में जब तुम स्कूल में दाखिल हुए थे तो 'क... ख... ग...' आदि का अक्षरज्ञान तुरन्त ही हो गया था कि विघ्न-बाधाएँ आईं थीं ? लकीरें सीधी खींचते थे कि कलम टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती थी ? जब साइकिल चलाना सीखा तब एकदम सीखे थे या इधर-उधर गिरकर सीखे थे ? अरे, जब चलना सीखा था तब भी तुम एकदम सीखे थे क्या ? नहीं । कई बार गिरे, कई बार उठे, चालनगाड़ी पकड़ी, अंगुली पकड़ी तब चलने के काबिल बने और अब तुम दौड़ सकते हो ।

अब मेरा सवाल है कि जब तुम चलना सीखे तो विघ्न क्यों आये ? तुम्हारा जवाब होगा कि : 'बाबाजी ! हम कमजोर थे, अभ्यास नहीं था ।'

ऐसे ही ईश्वर के लिये भी तुम्हारा प्रेम कमजोर है और चलने का अभ्यास भी नहीं है, इसीलिये विघ्न आते और दिखते हैं । हालाँकि साधक तो विघ्न-बाधाओं से खेलकर मजबूत होता है ।

बाधाएँ कब बाँध सकी हैं ।
आगे बढ़नेवालों को ॥
विपदाएँ कब रोक सकी हैं ।
पथ पर चलनेवालों को ॥

स्वामी रामतीर्थ कहते थे : "हे परमात्मा ! रोज ताजा मुसीबत भेजना ।"

माता कुन्ती श्रीकृष्ण से प्रार्थना करतीं थीं :

विपद: सन्तु न: शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भक्तो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥

'हे जगद्गुरो ! हमारे जीवन में सर्वदा पद-पद पर विपत्तियाँ आती रहें, क्योंकि विपत्तियों में ही निश्चित रूप से आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन हो जाने पर फिर जन्म-मृत्यु के चक्कर में नहीं आना पड़ता है ।'

(श्रीमद्भागवत : १.८.२५)

एक बीज को वृक्ष बनने तक कितने विघ्न आते हैं ? कभी पानी मिला कभी नहीं मिला, कभी आँधी आई कभी तूफान आया, कभी पशु-पक्षियों ने मुँह-चोंचें मारीं... ये सब सहते हुए भी वृक्ष खड़े हैं तो तुम भी सब सहन करते हुए ईश्वर के लिये खड़े हो जाओ तो तुम ब्रह्म हो जाओगे ।

भले आज तूफान उठकर के आयें ।
बला पर चली आ रही हो बलायें ॥
भारत का वीर है दनदनाता चला जा ।
कदम अपने आगे बढ़ाता चला जा ॥

साधक : हे गुरुदेव ! हमारा कल्याण कैसे होगा ?

पू. बापू : जीवन्मुक्त आत्मज्ञानी संतों की शरण जाने से, उनका संग करने से ही कल्याण होगा । जिसके पास जो चीज होती है, वह वही देता है । शराबी का संग शराबी, जुआरी का संग जुआरी, भंगेड़ी का संग भंगेड़ी बना देता है, ऐसे ही ईश्वरप्राप्त महापुरुषों या संतों का संग करोगे तो वह संग परम कल्याणस्वरूप की ओर ले जाएगा । उसीमें तो कल्याण है ।

श्रीमद्भागवत में राजा परीक्षित शुकदेवजी से पूछते हैं कि मनुष्य का कल्याण किसमें है ? शुकदेवजी कहते हैं :

तस्मात्सर्वात्मना राजन् हरि: सर्वत्र सर्वदा ।
श्रोतव्य: कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥

'हे परीक्षित ! इसलिये मनुष्यों को चाहिये कि वे सब समय और सभी स्थितियों में अपनी सम्पूर्ण शक्ति से भगवान श्रीहरि का ही श्रवण-कीर्तन और स्मरण करें ।' (२.२.३६)

भगवत्स्वरूप का स्मरण करे, चिन्तन करे, कीर्तन करे- इसमें मनुष्य का कल्याण है । कीर्तन से, मंत्रजाप से तुम्हारे रक्त के कण बदलते हैं, रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ती है। शरीर तन्दुरुस्त और

(शेष पृष्ठ २३ पर)

शरद ऋतुचर्या

इस ऋतु में ओस का सेवन, भरपेट भोजन, दही, तेल, धूप, दिवस की निद्रा, बर्फ का सेवन, तीखे एवं तले पदार्थों के सेवन का त्याग करना चाहिए ।

इस ऋतु में पित्तदोष की शांति के लिए ही खीर खाने, घी का हलुआ खाने तथा श्राद्ध कर्म करने का आयोजन शास्त्रकारों द्वारा किया गया है । पित्तदोष की शांति के लिए ही चंद्रविहार, गरबों का आयोजन तथा शरदपूर्णिमा के उत्सव का वर्णन आता है । गुड़ एवं घूघरी (उबाली हुई ज्वार-बाजरा आदि) के सेवन से तथा निर्मल, स्वच्छ वस्त्र पहनकर फूल, कपूर, चंदन द्वारा पूजन करने से मन प्रफुल्लित एवं शांत होकर पित्तदोष की शांति में सहायक होता है ।

इस ऋतु में आमपित्त का प्रकोप होकर जो बुखार आता है उसमें एकाध उपवास रखकर नागरमोथ, पित्तपापड़ा, चंदन, वाला (खस), सोंठ डालकर उबालकर ठंडा किया हुआ पानी पीना चाहिए । पैरों में घी घिसना चाहिए । बुखार उतरने के बाद सावधानीपूर्वक ऊपर की ही औषधियों में गिलोय, कालीद्राक्ष एवं त्रिफला मिलाकर उसका काढ़ा बनाकर पीना चाहिए ।

व्यर्थ जल्दबाजी के कारण बुखार उतारने की गोलियों का सेवन न करें अन्यथा पीलिया, यकृतशोथ (लीवर की सूजन) आँव, रतवा, टायफाइड, जहरी मलेरिया, पेशाब एवं दस्त में रक्त गिरना, शीतपित्त जैसे नये-नये रोग होते ही रहेंगे। आजकल कई लोगों का ऐसा अनुभव है अत: मेहरबानी करके अंग्रेजी दवाओं से सदैव सावधान रहें ।

लीवर के रोग में

लीवर का रोग एलोपैथी में असाध्य माना जाता है । इलाज करते-करते मरीज मर जाता है, बाद में डॉक्टर बताते हैं : ''बापू ! लीवर की बीमारी का एलोपैथी में कोई स्थाई उपचार नहीं है । हमारी दवाइयों से मरीज को केवल आराम रहता है और हमारी जेब को भी आराम होता रहता है, इसीलिये हम ट्रीटमेन्ट करते रहते हैं ।''

मरीज मर जाता है, बाद में डॉक्टर बताते हैं : 'बापू ! लीवर की बीमारी का एलोपैथी में कोई स्थाई उपचार नहीं है । हमारी दवाइयों से मरीज को केवल आराम रहता है और हमारी जेब को भी आराम होता रहता है, इसीलिये ट्रीटमेन्ट करते रहते हैं ।''

मजबूरन हमें आयुर्वेद में इस रोग का उपचार खोजना पड़ा । आपके मित्र, स्नेही, कुटुम्बी, नाते-रिश्तेदार या किसीको भी लीवर का रोग हो तो उन्हें आप इंजेक्शन, कैप्सूल या रक्त परिवर्तन के चक्कर में न पड़ने दें । एक बहुत ही बढ़िया व आसान तरीका है लीवर रोग मिटाने का : केवल चुटकी भर चावल । जी हाँ ! एक चुटकी अर्थात् अंगुली और अंगूठे की सहायता से जितने साबूत चावल पकड़े जा सके, मुँह में रखकर पानी के साथ प्रतिदिन सुबह खाली पेट ही निगल जावें । इस प्रयोग में हाथ के छड़े हुए चावल हों तो अधिक लाभ मिलेगा । विशेष ध्यान यह रहे कि चावल साबूत हों । नियमित सेवन से लीवर के रोग में कुछ ही दिनों में लाभ मिलता है ।

कैंसर के रोगियों के लिये

दस ग्राम तुलसी का रस तथा दस ग्राम शहद मिलाकर सुबह-दोपहर-शाम देने से अथवा दस ग्राम तुलसी का रस एवं पचास ग्राम ताजा दही (खट्टा नहीं) देने से कैंसर के रोगी को राहत मिलती है । एक-एक घंटे के अन्तर से दो-दो तुलसी के पत्ते भी मुँह में रखकर चूसते रहें ।

दाँतों की सुरक्षा

वर्तमान समय में विदेशों में ९८ % बच्चों के दाँत खराब हो चुके हैं । कितने ही डेन्टिस्ट आए और आकर चले गये लेकिन लोग अभी भी परेशान हैं । भारत में भी बच्चों को लाड़ प्यार में टॉफी, चॉकलेट व मिठाइयाँ ज्यादा खिलाने के कारण यह बीमारी बड़ा रूप लेती जा रही है । इस पर काबू पाने के लिये आप अपने बच्चों में पाँच-सात तुलसी के पत्ते प्रतिदिन चबाकर खाने एवं उन्हें मुँह में घुमाने की आदत डालिए । इससे उनके दाँत तो बढ़िया रहेंगे ही, साथ ही, उनकी स्मरण शक्ति में भी अद्भुत वृद्धि होगी, कैंसर की बीमारी कभी नहीं होगी, जलंधर-भगन्दर भी कभी नहीं होगा ।

परम स्वास्थ्य की ओर...

'मैं ईश्वर का हूँ... ईश्वर मेरे हैं...' ऐसा भाव ज्यों दृढ़ होगा त्यों ही हृदय पावन होना शुरू हो जाएगा । बाहर के यज्ञ-याज्ञ अच्छे हैं लेकिन उनसे भी अनन्त गुना अच्छा है ईश्वर को अपना मानना और अपने को ईश्वर का मानना । संत पुरुषों का कहना है कि डेढ़ पुण्य और डेढ़ पाप हैं । 'मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे हैं'-ऐसा मानना पूरा पुण्य है बाकी सब आधे पुण्य हैं । 'मैं शरीर हूँ और संसार सच्चा है' ऐसा मानना पूरा पाप है और शेष सब आधा पाप । ईश्वर का होना अंतरंग भाव है और पुण्य बहिरंग है । पुण्यकर्म तो करना ही चाहिये लेकिन 'ईश्वर मेरे है और मैं ईश्वर का हुँ' - यह स्मरण करना बहुत ऊँचा है ।

मकान को आप अपना कह सकते हैं, मकान-दुकान, कपड़े-लत्ते, गहने-गांठे को यहाँ तक कि जूते को भी आप अपना मानते हैं तो भगवान को अपना क्यों नहीं मानते ? भगवान को अपना मानने में आपके बाप का क्या बिगड़ता है ? जो कि साथ नहीं चलेंगे उन्हें अपना मानते हो लेकिन जो अभी भी साथ है, आपके जन्मने के पहले भी जो आपके साथ था और मरने के बाद भी जो आपका साथ नहीं छोड़ता उसे दृढ़ता से मानें कि हे प्रभु ! मैं आपका हूँ और आप मेरे हैं ।

❀

स्वास्थ्य-प्रश्नोत्तरी

प्रश्न : पहले कुसंग के कारण हस्तमैथुन की खराब आदत पड़ गई थी । 'यौवन सुरक्षा' जबसे पढ़ने को मिली तबसे वह गंदी आदत तो छूट गई है किन्तु इन्द्रिय विकृत हो गई है । चेहरा निस्तेज एवं स्मरण शक्ति मंद हो गई है । वीर्य पतला हो गया है । थोड़ा-सा श्रम करते ही थकान लगने लगती है । कृपया उपाय बताएँ ।

- यह अनेक युवाओं का प्रश्न है ।
यहाँ किसीका नाम नहीं दे सकते ।

उत्तर : नियमितरूप से सत्संग, शिविर एवं सेवा में समय बितायें । प्राणायाम, योगासन एवं ध्यान का अभ्यास करें । कुसंगी मित्रों का साथ छोड़ दें । अश्लील साहित्य एवं सिनेमा का त्याग कर दें । अश्लील बातें होती हों वहाँ न रुकें । आहार में नमक-मिर्ची का त्याग कर दें या एकदम कम कर दें । आहार में दूध-घी वगैरह ज्यादा लें । शरीर पर मालिश करें एवं सूर्यनमस्कार, दंड-बैठक आदि व्यायाम करें । कुछ समय तक दूध में अश्वगंधा एवं विदारीकंद उबालकर लें । च्यवनप्राश, सुवर्णमालती, रजतमालती का सेवन भी किया जा सकता है ।

'यौवन सुरक्षा' पुस्तक में 'आँवला-चूर्ण' की बात कही गयी है उसका सेवन करें । 'यौवन सुरक्षा', 'मन को सीख', 'पुरुषार्थ परमदेव' जैसी पुस्तकें बार-बार पढ़ें । हिम्मत करें । बिगड़ी हुई बाजी सुधर जायेगी । आपके जैसे पाँच-छः युवानों को बचाने का प्रयत्न करें, इससे पुण्य होगा, प्रभु प्रसन्न होंगे

एवं आत्मसंतोष होगा ।

प्रश्न : मुझे सफेद दाग हैं । उपचार बतायें ।

- विनोदकुमार, भुसावल ।

उत्तर : काकोटुम्बर नामक बूटी जहाँ-वहाँ होती है उसका दूध लगायें और उसकी छाल का काढ़ा बनाकर रोज पियें । उस दाग पर लोहे की शलाका से घिसें, जलन होने पर बंद कर दें । त्रिफला चूर्ण का रोज सेवन करें । दूध, फल, मिठाई, खटाई और लालमिर्च बंद कर दें ।

दूसरा उपाय है- बाजार में बावची के दाने मिलते हैं उसका पाउडर बनाकर गोमूत्र में भीगोकर सुखा लें । फिर भिगोयें और सुखाएँ । इस तरह २१ बार करें । फिर उस बावची का लेप करें और आधा चम्मच की मात्रा में पानी के साथ खायें । लेकिन इस प्रयोग से फोड़ा होने की संभावना है । फोड़े के दर्द को सह सकें तो यह उपाय करें ।

प्रश्न : मेरी उम्र १९ साल है, बाल सफेद हो गये हैं । उपाय बतायें । - हरेश, हाथरवा

उत्तर : बाल सफेद होने के कई कारण हैं । आयुर्वेद के अनुसार बाल अस्थि धातु का मल है । अस्थि धातु में विकृति आती है, पित्त का दोष बढ़ता है तब बाल सफेद होते हैं । आपको छोटी उम्र में ही ऐसा हुआ है तो शायद एलोपैथी की दवाइयों के 'साइड इफेक्ट' का परिणाम हो सकता है ।

रोज पैर के तलुओं पर गाय का घी घिसें । आहार मैं दूध-घी का सेवन अधिक करें । खटाई एवं लाल या हरी मिर्च का सेवन बंद कर दें । रोज यष्टि व त्रिफला के मिश्रण का सेवन मिश्रीवाले दूध के साथ करें । आँवले के रस का सेवन रोज करें । जब हरे आँबले उपलब्ध न हो सके तब आँवला-चूर्ण का सेवन करें । सिर पर हाथीदाँत के तेल की या आँवला भृंगराज का तेल घर में बनाकर उसकी मालिश करें । भृंगराज के रस का सेवन करने से भी लाभ होता है ।

प्रश्न : मुझे १० वर्ष से गठिया का रोग है । मैं करीब चार महीने से पानी पीने का प्रयोग करती हूँ । मेरा यह इतना पुराना रोग इसी प्रयोग से दूर हो जायेगा अथवा कोई और दवाई है ? कृपया सूचित करें । इस समय मेरी उम्र ४५ वर्ष है ।

- स्वर्णकान्ता, नई दिल्ली-२४.

उत्तर : 'पानी-प्रयोग' के अलावा निम्नलिखित चिकित्साएँ करें :

(१) पहले तीन दिन तक उबले हुए मूँग का पानी पियें । बाद में सात दिन तक सिर्फ उबले हुए मूँग ही खायें । सात दिन के बाद पंद्रह दिन तक केवल उबले हुए मूँग एवं रोटी खायें ।

(२) सोंठ के काढ़े में दो चम्मच अरण्डी का तेल डालकर सप्ताह में तीन दिन पियें ।

(३) दर्द-स्थल पर ज्यादा से ज्यादा सेंक करें एवं सुलभ हो तो एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति अपनायें ।

औषधियाँ : (१) सिंहनाद गुगल की दो-दो गोली सुबह-दोपहर-शाम पानी के साथ लें ।

प्रश्न : मेरी दोनों आँखों के सामने सर्प की छाया जैसे चित्र बनते हैं । जब मैं ऊपर आकाश की ओर देखता हूँ तब कभी काफी बड़े सर्प के रूप में आकर दिखाई देता है । मैंने डॉक्टरों से मशीन द्वारा आँखों की जाँच करवाई है लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ता । डॉक्टरों को रोग का पता नहीं चलता है । मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा कि मैं क्या करूँ ? वैसे मुझे कोई वहम नहीं है परंतु बात समझ में नहीं आती है । कई बार तो ऐसा दिखाई पड़ता है कि मानो सर्पों के कुण्डल से आँखें घिर गई हों । आपसे विनंती है कि आप मेरी इस समस्या को दूर करने के लिए उपाय बताएँ । मेरी उम्र २५ वर्ष है ।

- निरंजनसिंह, लुधियाना

उत्तर : आप निम्नानुसार चिकित्सा करें :

(१) मानसिक तनाव से सदैव बचें एवं सदैव प्रसन्न रहें । खास करके मानसिक तनाव के वक्त ऐसी आकृतियाँ अधिक दिखाई देने लगती हैं ।

(२) रोज सुबह तुलसी के ५-७ पत्तों को पानी में डालकर उबालें और उसकी भाप अपने नेत्रों पर ५ मिनट तक लें । दिन में तीन बार ऐसा करें ।

(३) सर्प जैसी विचित्र आकृतियों को ध्यान में न लायें । यदि दिखें भी तो उनकी ओर विशेष ध्यान

न दें ।

(४) रोज सुबह प्राणायाम, ध्यान एवं सर्वांगासन करें ।

(५) तेज, चमकीली रोशनी तथा धूप से अपनी आँखों को बचायें ।

(६) रात्रि को एक चम्मच त्रिफला चूर्ण पानी के साथ लें तथा सुबह त्रिफला के जल से आँखों को धोयें ।

प्रश्न : मुझे हाइड्रोसिल का रोग है । चार-पाँच डॉक्टर को बताया मगर वे इसका इलाज केवल ऑपरेशन ही बताते हैं । क्या ऑपरेशन कराना जरूरी है या ऐसे ही ठीक हो सकता है ? कृपया जवाब दें । उम्र ३५ साल है ।

उत्तर : आप हाइड्रोसील की जगह पर अरनी के पत्तों को खूब मसलकर उनका लेप करें ।

ग्वारपाठे के २० ग्राम रस में २ ग्राम हल्दी मिलाकर सुबह-शाम दो बार सेवन करें ।

पुनर्नवा (विषखपरा) का २०-२० मिलिग्राम रस दिन में तीन बार पियें ।

शरीर के जिस भाग (दाँयें या बाँयें) में हाइड्रोसिल हो उसके विपरीत दिशावाले हाथ के अंगूठे के मूल से दो अंगूठे जितने अंतर पर, ऊपर की ओर के दबाव बिन्दु पर, सुबह-दोपहर शाम खाना खाने से पहले दो मिनट तक पंपींग विधि से प्रेशर दें तो बहुत लाभ होता है ।

❀

पापकर्म से रोगोत्पत्ति

मनुष्यों में सारी बीमारियाँ अपने-अपने अनुचित कर्मोंसे होती हैं । विभिन्न व्याधियों में विभिन्न पापकर्म कारणरूप होते हैं, जिसका प्रमाण 'हारित संहिता' में वर्णित भगवान आत्रेय के उपदेश में मिलता है ।

अनजाने में हुए पाप का सच्चे हृदय से प्रायश्चित कर लिया जाये तो उस पाप से होनेवाली व्याधि प्रायश्चित के बल से सुखपूर्वक शीघ्र मिटती है लेकिन जानबूझकर किये गये पापकर्म का पछतावा हृदयपूर्वक भी किया जावे तभी भी उससे उत्पन्न व्याधि को मिटाने के लिये अधिक कष्ट होता है । जानबूझकर किये गये पापकर्म के पीछे यदि प्रायश्चित रूपी उपचार न करने में आवे तो उस पाप से उत्पन्न व्याधि असाध्य हो जाती है ।

जो व्यक्ति गुरु का अपमान, ब्रह्महत्या, गाय, मनुष्य अथवा अन्य किसीकी हत्या करता है, खेत, वृक्ष या जलाशय को क्षति पहुँचाता है, अपने स्वामी कि स्त्री या सगोत्र की स्त्री के साथ शयन अथवा परस्त्रीगमन जैसे महापाप करता है, उसे पांडुरोग, त्वचा के रोग, क्षयरोग (टी. बी.), अतिसार, प्रमेह, मूत्रघात, अश्मरी (पथरी), मूत्रकृच्छ, शूल, श्वास, खाँसी, शोथ (सूजन), वृण आदि महारोग होते हैं ।

ज्वर, अजीर्ण, उल्टी के रोग, भ्रम, मोह, अग्निमांद्य, यकृत-प्लीहा की विकृतियाँ आदि की उत्पत्ति में भी पापकर्म ही कारण माने गये हैं ।

ब्रह्महत्या करने से पांडुरोग एवं अन्य दूसरी बड़ी बीमारियाँ, गौहत्या से त्वचा के रोग, राजा की हत्या से क्षयरोग (टी. बी.) और दूसरों को परेशान करने से अथवा उनका घात करने से अतिसार होता है । अपने स्वामी या सेठ की स्त्री का संग करने से प्रमेह, पथरी या मूत्राघात जैसी व्याधियाँ होती हैं । अपने ही कुल की स्त्री का संग करनेवाले को भगंदर और चुगली करनेवाले को श्वास-खाँसी की बीमारी होती है । जो लोग दूसरों का मार्ग अवरुद्ध करते हैं, उन्हें पैर की व्याधियाँ होती हैं । देवालय अथवा जलाशयों में मल-मूत्र जैसे मलिन पदार्थ डालने पर उन्हें महापापरूप मलद्वार (गुदा) की व्याधियाँ होती हैं ।

ब्राह्मणों को परेशान करने से महाज्वर, दूसरों को अन्न मिलता हो, उसमें विघ्न डालने से अजीर्ण, दूसरों को विष देने से उल्टी, दूसरों को चक्कर में डालनेवालों को भ्रम, कपट करनेवालों को अपस्मार अकस्मात् (दुर्घटना) और जो व्यक्ति दूसरों को दूषित-खराब अन्न देता है, उसे अग्निमांद्य की बीमारी होती है ।

गर्भहत्या करने के पाप से यकृत और प्लीहा की व्याधियाँ होती हैं । जो व्यक्ति अयोग्य पदार्थों का पान करता है उसे रक्तपित्त होता है । वृक्षों की अधिक कटाई करने पर वृण एवं दूसरों के द्रव्य का हरण

करनेवालों को संग्रहणी नामक व्याधि होती है ।

चोरी करनेवालों को कुष्ठरोग होता है, दूसरों की निन्दा करनेवाले के सिर पर टाल हो जाती है, तर्क से दूसरों को गलत साबित करने पर नेत्रों को हानि होती है तथा दूसरों की हँसी करने पर नाक वक्र हो जाता है । अपने मुख से अपनी प्रशंसा करनेवाला दूसरे जन्म में ठिंगना हो जाता है ।

विशेष : यदि व्यवहार में ऊपर बताये गये रोगों में से किसी रोग से पीड़ित व्यक्ति मिले तो यह न समझें कि उसने कोई पाप किया है । आहार-विहार के कारण से भी रोग होते हैं । अत: गलत आहार-विहार से बचें और सत्कर्म, सदाचार व सत्संग में लगकर समय सँवारने को सावधान हो जायें ।

❀

(पृष्ठ ६ का शेष)

हरि हर निंदा सुनइ जो काना ।
होइ पाप गोघात समाना ॥

नानकजी ने भी कहा :

संत सतावे तीनों जावे तेज बल और वंस ।
ऐड़ा-ऐड़ा कई गया रावण कौरव केरो कंस ॥

भगवान सबको सद्‌बुद्धि दें ।

तुम केवल तुच्छ अपेक्षा छोड़ दो, चित्त से वैरवृत्ति छोड़ दो और आत्मा के नाते जियो । फिर तुम्हारा हित चाहनेवालों को, तुम्हारे सत्कार्यों का प्रचार करनेवालों को घर बैठे शांति और आनंद की प्राप्ति होगी और उसमें विघ्न करनेवालों को घर बैठे अशांति और फटकार देनेवाले लोग खड़े हो जाएँगे । यह नीति है । मृत्युलोक कर्मप्रधान है । स्वर्ग में पुण्यों का फल भोगने की प्रधानता है, नर्क में पापों का फल भोगने की प्रधानता है और यहाँ कर्म की प्रधानता है । कर्म करते हुए आप स्वर्ग का रास्ता लो, नर्क का रास्ता लो या स्वर्ग-नर्क दोनों पर पैर रखकर परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार करके मुक्त हो जाओ, इसमें आप स्वतन्त्र हो ।

❀

'ऋषि प्रसाद' एक आदर्श पत्रिका ही नहीं, प्रेरणा का स्रोत भी है । इससे निकलनेवाली प्रेम की धारा में लाखों-लाखों भक्त अवगाहनकर अपने जीवन में परिवर्तन ला रहे हैं । 'शरीर-स्वास्थ्य' और 'आहार विहार' स्तम्भ तो स्वास्थ्य के लिये अत्यधिक हितकारी है । यह इतनी सारी नवीन जानकारी देता है कि कुछ जानने के लिये अन्यत्र भटकना नहीं पड़ता है । पहले यह पत्रिका मेरे कार्यालय में मेरे ही पास आती थी और पूरे स्टाफ द्वारा पढ़लिये जाने के बाद मुझे मिलती थी लेकिन आज वे सभी 'ऋषि प्रसाद' के ग्राहक हैं, नियमित पाठक हैं ।

हमारे लिये सौभाग्य की बात है कि 'ऋषि प्रसाद' का मासिक प्रकाशन आरंभ हो गया है यह अति स्तुत्य कदम है... बधाई ।

- सुन्दर लखवानी
डिप्टी इंजीनियर, H. M. T. Ltd., अजमेर ।

(पृष्ठ १८ का शेष)

मन प्रसन्न रहेगा तो शराब-कबाब, परस्त्रीगमन आदि पापों की ओर प्रवृत्ति न होगी । संयम से रहोगे तो स्वस्थता, प्रसन्नता रहेगी और निजस्वरूप परमात्मा का ध्यान करोगे तो उससे बड़ा कल्याण क्या हो सकता है ?

धन मिलने से कल्याण होता तो सब धनवान सुखी हो जाते । कुर्सी मिलने से कल्याण होता तो कुर्सीवाले सब सुखी हो जाते और कुर्सी बिना कल्याण होता तो बिना कुर्सीवाले सब निश्चिन्त हो जाते ।

कल्याण... कल्याण तो भाई ! कल्याणस्वरूप ईश्वर को पाये हुए संतों के संग से ही होता है ।

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों एवं एजेन्ट भाइयों से अनुरोध

'ऋषि प्रसाद' के मासिक संस्करण के प्रारंभ के उपलक्ष्य में पाठकों की ओर से हर्ष प्रदर्शित करते हुए कई पत्र आते रहे हैं। मासिक संस्करण का १६ पृष्ठोंवाला प्रथम अंक प्रकाशित होने पर प्यासे सुज्ञ पाठकों की ओर से अंक के पृष्ठ बढ़ाने की माँग उठी है । अत: पाठक-परिवार की वह माँग व इच्छा को ध्यान में रखते हुए 'ऋषि प्रसाद' के मासिक संस्करण के पृष्ठ १६ के बजाय २४ किये जाते हैं । मुखपृष्ठ भी सब अंकों में रंगीन ही दिया जाएगा । फलत: मासिक संस्करण के सदस्य शुल्क में भी मजबूर होकर सुधार करना पड़ रहा है जो इस प्रकार है : भारत, नेपाल व भूटान में मासिक संस्करण का वार्षिक सदस्य शुल्क Rs. 50 एवं आजीवन सदस्य शुल्क Rs. 500. इसी प्रकार विदेश में क्रमश: US$ 30 और US$ 300.

द्विमासिक संस्करण का शुल्क यथावत् है ।

२. जो साधक भाई रू. २५०/- जमा कराके 'ऋषि प्रसाद' के द्विमासिक संस्करण के आजीवन सदस्य बने हुए हैं, वे चाहें तो अतिरिक्त रू. २५०/- जमा करवाकर इसका मासिक अंक भी प्राप्त कर सकते हैं। कृपया शुल्क भेजते समय अपना सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखकर भेजें ।

३. रू. २५/- जमा कराकर वार्षिक सदस्य बने पाठक भाइयों से मासिक संस्करण हेतु अतिरिक्त शुल्क नहीं स्वीकारा जाएगा । वार्षिक सदस्यता की अवधि समाप्त होने पर ही अथवा नये सिरे से वे मासिक संस्करण के सदस्य बन सकते हैं ।

४. यदि आपके पते में पिनकोड नहीं दिया गया है अथवा गलत लिखा है तो कृपया पते के लेबल में सही पिनकोड लिखकर भेज देवें। सही पिनकोड पर पत्रिका शीघ्र पहुँचती है ।

५. 'ऋषि प्रसाद' के मासिक संस्करण एवं द्विमासिक संस्करण के अंक नंबर क्रमश: निरन्तर चलते रहेंगे । मासिक संस्करण के सदस्यों को सभी अंक प्राप्त होंगे जबकि द्विमासिक संस्करण के सदस्यों को हर दो मास में केवल एकी संख्यावाले अंक ही प्राप्त होंगे जैसे कि अंक नंबर ३३, ३५, ३७, ३९, ४१ इत्यादि । उन्हें अंक नंबर ३४, ३६, ३८, ४०, ४२ इत्यादि प्राप्त नहीं होंगे ।

पू. बापू के आगामी सत्संग कार्यक्रम

(१) राजकोट (गुज.) में शरदपूर्णिमा महोत्सव सत्संग-प्रसाद : दिनांक : ६ से ९ अक्तूबर ९५ स्थान : संत श्री आसारामजी आश्रम, न्यारी डेम के पास, कालावड़ रोड । संपर्क : ९११३५४, ९११३७०.

(२) सिद्धपुर (गुज.) में दिव्य सत्संग अमृतवर्षा दिनांक : २९ अक्तूबर शाम ३ से ५. दिनांक : ३० अक्तूबर से २ नवम्बर सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३ से ५. स्थान : सरस्वतीनगर के पीछे, गुरुकुल के सामनेवाला मैदान, हाइवे । संपर्क : २०६४५, २१४५१

(३) झांसी में श्री लक्षचंडी महायज्ञ आयोजन समिति द्वारा आयोजित दिव्य सत्संगामृत महोत्सव दिनांक : ४ से ७ नवम्बर सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३ से ५. स्थान : श्री सिद्धेश्वर सिद्धपीठ, ग्वालियर रोड़ । लक्षचंडी यज्ञ-पूर्णाहुति दिनांक ७ को पू. बापू के करकमलों द्वारा होगी ।

(४) हैदराबाद में ज्ञानामृत-वर्षा : दिनांक : ८ से १२ नवम्बर सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३०. स्थान : बापूनगर नुमाईश मैदान, भाग्यनगर । संपर्क : ८४७१०५, ८४९२७४, ५९३६२९ ५१३०१७

(५) सोलापूर में दिव्यज्ञान सत्संग-सरिता दिनांक : १५ से १९ नवम्बर सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३० स्थान : होम मैदान, सोलापूर । संपर्क : २५०४५, ६२१४३०.

(६) औरंगाबाद में दिव्य सत्संग-वर्षा दिनांक : २२ से २६ नवम्बर सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३०. स्थान : अयोध्या नगरी, स्टेशन रोड़ । संपर्क : ३३१९३२, ३३६४८०, ३३२६७८, ३३८८९१, ३३३९९१.

(७) भूसावळ में दिव्य सत्संग-वर्षा दिनांक : ६ से १० दिसम्बर सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३० स्थान : डी. एस. हाईस्कूल मैदान । संपर्क : २२१९२, २३५५०, २३५०२

गुरु और सद्‌गुरु

गुरु उन्हें कहते हैं, जिनसे मनुष्य किसी ऐसी नई बात को सीखे, जिसको वह नहीं जानता। इसीलिये मनुष्य सभी को गुरु मान सकता है। अवधूत ने इसी दृष्टि से चौबीस गुरु बनाये थे।

सद्‌गुरु इन सारे गुरुओं से विलक्षण होते हैं। वे सत्स्वरूप परमात्मा के पथ को जानते हैं, इसीसे मनुष्य उन सद्‌गुरु को परमगुरु मानकर सबकुछ उनके चरणों पर न्यौछावर कर देता है क्योंकि वह उन सद्‌गुरु से ऐसी चीज पाता है, जिसके सामने संसार की सभी चीजें, सभी स्थितियाँ बहुत ही कम कीमत की और अत्यन्त तुच्छ हैं।

सद्‌गुरु ही गोविन्द को मिलाते हैं, सद्‌गुरु ही शिष्य के दुःखों को अशेष हरण करते हैं, इसीलिये शिष्य की दृष्टि में सद्‌गुरु ईश्वर से बढ़कर सेव्य हैं। इसीसे शास्त्रों और संतों ने सद्‌गुरु की अपार महिमा गायी है और सद्‌गुरु की शरणागति के बिना भगवान की प्राप्ति को अति दुर्लभ-असंभव कहा है। बात भी बिल्कुल ठीक है। अनुभवी मार्गप्रदर्शक सद्‌गुरु ही शिष्य को माया के दुर्गम पथ से पार कर लक्ष्य स्थान पर ले जाने में समर्थ हैं। ऐसे समर्थ सद्‌गुरु की जितनी ही पूजा हो, जितना सम्मान हो, जितनी भक्ति की जाय, उतनी ही थोड़ी है क्योंकि ऐसे सद्‌गुरु का बदला तो कभी चुकाया ही नहीं जा सकता। ऐसे सद्‌गुरु का द्रोही नरकगामी न हो तो दूसरा कौन होगा ? ...और ऐसे सद्‌गुरु की शरण न लेनेवाले से बढ़कर मूर्ख और मन्दभागी भी और कौन होगा ?

– श्री हनुमान प्रसादजी पोद्दार

उठ पड़े हजारों हाथ जब सद्गुरु ने माखन लुटाया...

जन्माष्टमी पर्व पर आयोजित रास - गरबा उत्सव। (सूरत आश्रम)

घुंटू (ता. मोरबी, गुजरात) में विडियो कैसेट सत्संग सप्ताह के आयोजन का दृश्य। (दिनांक : ६ से ११ जून १९९५)

इन्दौर युवा समिति द्वारा खंडवा उपमाखेड़ी प्रान्त की सीमा पार धारणी (महा.) एवं कलमखार (महा.) में विडियो सत्संग, कीर्तन, प्रभातफेरी का आयोजन। निःशुल्क साहित्य वितरण। इन्दौर के विभिन्न क्षेत्रों में विडियो सत्संग व ध्यान योग केन्द्र आयोजन।

REGISTERED WITH REGISTRAR OF NEWSPAPERS FOR INDIA UNDER NO. 48873/91 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO. 207 REGISTRATION NO. GAMC/1132